॥ श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत–पत्रिका

वर्ष—२० राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप–रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१–४

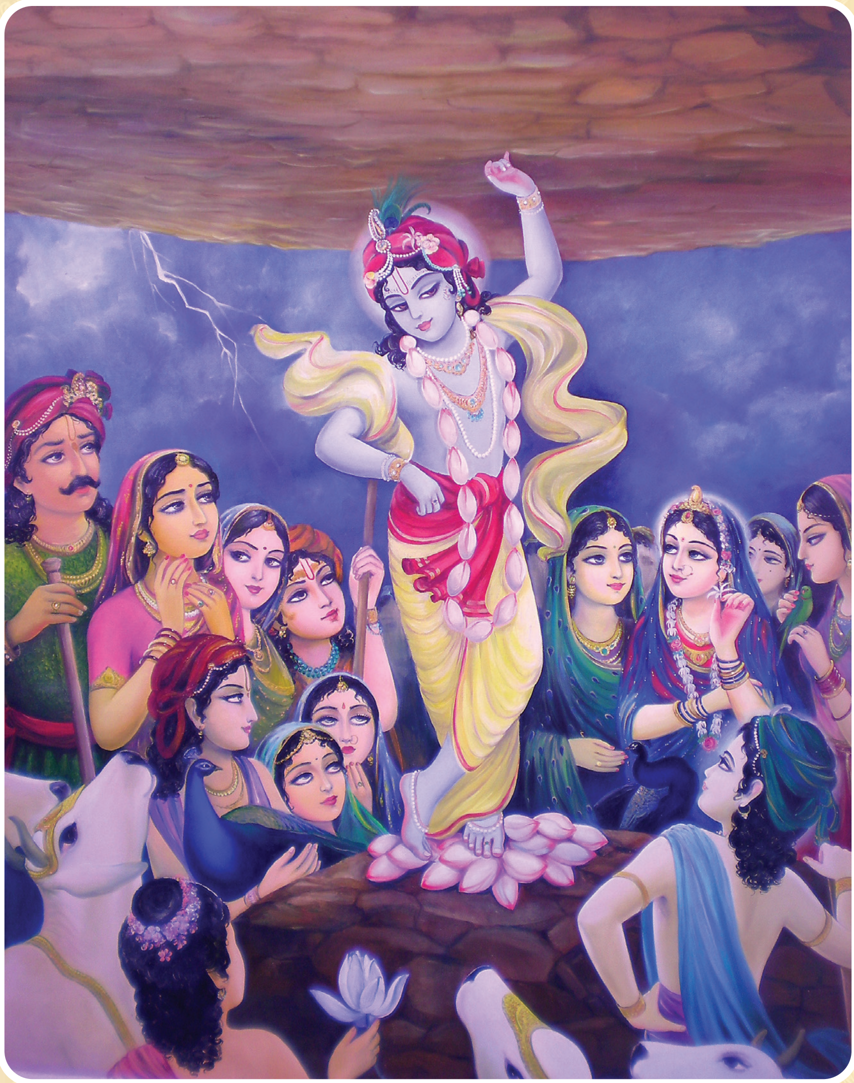

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी–वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा–स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज
श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराज
श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी, श्रीमती वृन्दा(वन्दना) दासी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी–एच. डी.
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी–एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल— श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीसुबलसखा दास, श्रीप्रेमदास

ले–आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

कार्यकारी सहायक—पूजा दासी, गौरराज दास, सुशीलकृष्ण दास,
शचीनन्दन दास, गौरप्रिया दासी

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा–२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

वर्ष २०

श्रीगौराब्द - ५३८
वि. सं. - २०८१; विष्णु-वामन मास ; सन् - २०२४ (२६ मार्च - २१ जुलाई)

संख्या १-४

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत श्रीगोवर्धनोद्धार............ २
—श्रील रूप गोस्वामी

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

सहिष्णुता एवं अमानित्व............................... ४
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप................................... ६
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

निष्ठाके साथ चातुर्मास्यादि व्रत पालन करते हुए कृष्णके लिए अखिल चेष्टा-युक्त होना होगा... १०
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका उन्नतीसवाँ वर्ष............... १२
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत

वास्तविक शिष्य कौन है?............................... १७
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

धारावाहिक

श्रीगौराङ्ग-सुधा.. २७

विरह-सम्वाद

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज........ ३०

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज.............. ३३

श्रीपाद नवीन कृष्ण ब्रह्मचारी...................... ३५

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

(वर्ष-१९, संख्या-९-१२ से आगे)

श्रीगोवर्धनोद्धराय नमः।

अथ गोवर्धनं प्रार्थयते—

गिरे तात गोवर्धन प्रार्थनेयं वपुः स्थूलनालीलघिष्ठं विधेयम्।
भवन्तं यथा धारयन्नेष हस्ते न धत्ते श्रमं मङ्गलात्मन्नमस्ते॥१४॥

अनन्तर श्रीराधिका गिरिराज गोवर्धनसे कह रही हैं—हे परमपिता गिरिराज गोवर्धन! मैं प्रणाम करके आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप व्रजवासियोंके कल्याणकारी हैं, अतएव तृणके जैसी लघु मूर्ति धारण करें, जिससे आपको अनायास धारण करनेवाले हमारे प्रियतम श्यामसुन्दरको परिश्रमका बोध न हो॥१४॥

भ्रमत् कुन्तलान्तं स्मितद्योतकान्तं लसद्गण्डशोभं कृपाशेषलोभं।
स्फुरन्नेत्रलास्यं मुरारेस्त्वमास्यं वराकूतशालि स्फुटं लोकयालि॥१५॥

पुनः श्रीविशाखाको सम्बोधित कर श्रीराधिका कहने लगीं—अयि विशाखे! यह देख, व्रजेन्द्रनन्दन कुटिल केशोंसे शोभित कपोल और चञ्चल नयनोंसे शोभित मुखकमलके द्वारा मेरे प्रति दृष्टिपात करते हुए अपने अन्तरके गूढ़भावको प्रकाशित कर रहे हैं॥१५॥

निपीयेति राधा लतावाङ्गरन्दं वरप्रेम सौरभ्यपूरादमन्दम्।
दधानं मदं भृङ्गवत्तुङ्गकूजं वराङ्गी चलापाङ्ग भङ्गाप्तपूजं॥१६॥

कल्पलतारूपी श्रीमती राधिकाके प्रेमरूपी सुगन्धसे परिपूर्ण अति-उत्तम वचन-मकरन्दको पानकर श्रीकृष्णने भ्रमरकी भाँति अपार आनन्दका अनुभव किया और वे उनकी अपाङ्ग भङ्गीके द्वारा सरस पूजित हुए॥१६॥

कथं नाम दध्यात्क्षुधाक्षामतुन्दः शिशुर्मे गरिष्ठं गिरीन्द्रं मुकुन्दः।
तदेतस्य तुण्डे हठादर्पयारं व्रजाधीश दध्नाचितं खण्डसारं॥१७॥

श्रीयशोदा नन्द महाराजको सम्बोधित करके बोलीं—हे व्रजराज! मेरे छोटेसे बालक गोपालने बहुत देरसे कुछ भी नहीं खाया है, इस विशाल गोवर्धनको धारण करके परिश्रमसे क्लान्त और भूखसे व्याकुल हो गया है, अतएव आप शीघ्र ही इसके मुखमें दधि-दूध मिश्रित कुछ मिष्ठान्नको अर्पण करें॥१७॥

महाभारनिष्ठे स्थिते ते कनिष्ठे लभे वत्स नीलाम्बरोद्दामपीडां।
अवष्टभ्य सत्त्वं तदस्मै बल त्वं ददस्वाविलम्बं स्वहस्तावलम्बम्॥१८॥

तदनन्तर श्रीबलदेवको सम्बोधनकर यशोदा मैया कहने लगीं—हे नीलाम्बर बलराम! हे वत्स! तुम्हारा अनुज कृष्ण अत्यधिक भारी गिरिराजको उठानेसे क्लान्त हो रहा है, उसे देखकर मुझे बहुत कष्ट हो रहा है, अतएव तुम शीघ्र ही बल प्रकाश करके अपने हाथका सहारा देकर उसकी सहायता करो॥१८॥

इति स्निग्धवर्णां समाकर्णयन्तं गिरं मातुरेनां च निर्वर्णयन्तम्।
कनिष्ठाङ्गुली शृङ्गविन्यस्तगोत्रं परिप्रीणितव्यग्र गोपालगोत्रम्॥१९॥

श्रीरूप गोस्वामी आगे कह रहे हैं—हे कृष्ण! जननी यशोदाके इस प्रकार स्नेहपूर्ण वचनको श्रवण करते हुए आपने अपनी माताके प्रति सस्नेह नयनसे दृष्टिपात किया और उसी क्षण अत्यन्त सहजतापूर्वक गिरिराजको वाम हस्तकी कनिष्ठ अंगुलीके शीर्षपर स्थानान्तरित करते हुए उसे पराक्रमपूर्वक धारण किया तथा भयसे व्याकुल गोपोंका प्रीति विधान किया॥१९॥

अमीभिः प्रभावैः कुतोऽभूदकुण्ठः शिशुर्धूलिकेलीपटुः क्षीरकण्ठः।
बिभर्त्यद्य सप्ताब्दिको भूरिभारं गिरिं यच्चिरादेष कैलाससारं॥२०॥

(तब व्रजके गोपगण व्रजराज श्रीनन्द महाराजसे कहने लगे—) सात वर्षकी अवस्थाके खेलने और दुग्धपान योग्य बालकने कैलास पर्वतकी भाँति अति विशाल गिरिराज गोवर्धनको सामान्य छत्रकी भाँति अनायास धारण कर लिया, अतएव इसमें ऐसा प्रभाव अकस्मात् कहाँसे आया? ॥२०॥

सत्यसंकल्पतां प्रतिपादयन्तः प्राहुः—

न शङ्का धरभ्रंशनेऽस्माकमस्मान्नखाग्रे सहेलं वहत्येष यस्मात्।
गिरिर्दिक्करीन्द्राग्रहस्ते धरावद्भुजे पश्यतास्य स्फुरत्यद्य तावत्॥२१॥

(गिरिराजको उठानेका कृष्णका संकल्प सुदृढ़ है, यह प्रतिपादित करते हुए व्रजगोपोंने आगे कहा—) देखो! जिस प्रकार आठों दिशाओंकी रक्षा करनेवाले दिग्गज हाथियोंने* अपनी सूँडके अग्रभागमें पृथ्वीको धारण किया हुआ है, उसी प्रकार इस बालकने अपने वाम हस्तपर गिरिराज गोवर्धनको वहन कर लिया है, और पर्वत इसके हाथसे गिर जाएगा, यह सन्देह करना भी हमारे लिये वृथा है क्योंकि इसने नखके अग्रभागके द्वारा इस गुरुभारको अनायास ही वहन किया है॥२१॥

क्रमशः

* अष्टदिग्गज आठ प्रसिद्ध हाथियोंका एक समूह है जो ब्रह्माण्डकी आठ दिशाओंमें आठ क्षेत्रोंके संरक्षकके रूपमें सेवा करते हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

सहिष्णुता
(सहनशीलता)

प्रश्न १—कृष्णकी प्रसन्नताके लिए प्रयासरत सहनशील व्यक्तिका क्या कर्त्तव्य है?

उत्तर—"यदि कोई तुम्हारी बुराई करता है, तो उसे सहन करना चाहिए, किसीका भी अपमान नहीं करना चाहिए। इस मनुष्य शरीरको धारण करके किसीके भी प्रति शत्रुताका भाव नहीं रखना चाहिए। काम कलिका स्थान है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। कृष्णको प्रसन्न करनेकी कामना अप्राकृत है, उसीका नाम प्रेम है। निज इन्द्रियों द्वारा भोग करनेकी कामना प्राकृत है, वही कलिका निवास स्थान है। अवश्य ही ऐसी कामनाका त्याग करना चाहिए।"

(कलि, ससङ्गिनी क्षेत्रवासिनी, सज्जन-तोषणी १५/२)

प्रश्न २—क्या विभिन्न प्रणालियोंके प्रति असहनशीलताका प्रदर्शन स्वधर्मके प्रति अनुरागका लक्षण है?

उत्तर—"जो भिन्न प्रणालियोंके प्रति द्वेष, हिंसा, असूया (दोषदृष्टि) या निन्दा करते हैं, वे नितान्त असार या बुद्धिहीन हैं। उनकी अपने चरम प्रयोजनके प्रति उतनी रुचि नहीं होती, जितनी व्यर्थके विवादमें होती है।"

(चैतन्य-शिक्षामृत, प्रथम वृष्टि, प्रथम धारा)

प्रश्न ३—क्या सकाम भक्ति करनेवाला व्यक्ति सहनशील हो सकता है?

उत्तर—"जिनकी भक्ति सकाम है, वे क्रोधपर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। केवल विवेकके द्वारा क्रोधपर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। विषयोंके प्रति अभिनिवेश क्षणभरमें ही विवेकको नष्ट कर देता है तथा अपने राज्यमें क्रोधको स्थान दे देता है।"

(धैर्य, सज्जन-तोषणी ११/५)

प्रश्न ४—नाम-कीर्तनकारीकी सहनशीलता कैसी होनी चाहिए?

उत्तर— वृक्षसम क्षमागुण करबि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि अन्ये करबि पालन॥

(श्रीशिक्षाष्टक, गीत ३)

[अर्थात् नामकीर्तनकारी व्यक्तिके लिए कहा गया है कि उसे वृक्षके समान क्षमागुणसे सम्पन्न होना चाहिए। अपने प्रति की गयी हिंसाका बदला लेने की भावना त्यागकर उसे अन्योंका पालन करना चाहिए।]

प्रश्न ५—"वृक्षसे भी अधिक सहनशील" के द्वारा कैसी दया सूचित होती है?

उत्तर—"तरोरपि सहिष्णुना इतिवाक्येन तरुः सञ्छेदकस्यापि छायाफलदानेनोपकरोति, कृष्णभक्तस्तु तदपेक्षाच्चप्रवृत्त्या दयया सर्वान् शत्रुमित्रानुपकरोतिति सूचितम्। अनेन हरिनामकृतां निर्मत्सरतालंकृतं दयारूपं द्वितीयलक्षणं भवति।" [(हरिनाम कीर्तनकारीके चार लक्षण कहे गये हैं—तृणसे भी अधिक सुनीचता, वृक्षसे भी अधिक सहनशीलता, अन्योंसे सम्मानकी कामना नहीं करना एवं अन्योंको

सम्मान प्रदान करना।) अर्थात् 'तरोरपि सहिष्णुना' इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि वृक्ष इतने सहनशील होते हैं कि अपनेको काटनेवालेको भी वे सुशीतल छाया एवं सुमधुर फल आदि प्रदानकर उसका उपकार ही करते हैं। कृष्णभक्त तो उनसे भी अधिक दयालु होते हैं तथा वे शत्रु-मित्र सभीका उपकार करते हैं। यह 'निर्मत्सरता युक्त दया' हरिनाम-कीर्तनकारी साधु पुरुषोंका दूसरा लक्षण है।] (श्रीशिक्षाष्टक, सन्मोदन भाष्य, ३)

प्रश्न ६—क्या धैर्यहीन व्यक्तिका भजन हो सकता है?

उत्तर—"भजनशील व्यक्तियोंके लिए धैर्यकी अति आवश्यकता है। जिनमें धैर्य गुण है, वही धीर है। धैर्यगुणके अभावमें मानव चञ्चल हो जाता है। जो अधीर हैं, वे कोई भी कार्य नहीं कर सकते। धैर्य गुणके द्वारा साधक अपनेको अपने वशमें रखकर अन्तमें जगत्को अपने वशमें कर लेता है।"

(धैर्य, सज्जन-तोषणी ११/५)

अमानित्व

(अपने सम्मानकी कामनासे रहित होना)

प्रश्न १—अमानी अर्थात् सम्मान प्राप्तिकी आशासे रहित कैसे हुआ जा सकता है?

उत्तर—"मैं ब्राह्मण हूँ, मैं सम्पन्न हूँ, मैं शास्त्रज्ञ हूँ, मैं वैष्णव हूँ, मैं गृहत्यागी हूँ—ऐसा अभिमान मत करना। इन समस्त अवस्थाओंमें जो-जो सम्मान है, उसे पानेकी इच्छा दूसरे लोग करें, परन्तु मैं ऐसा अभिमान करके दूसरोंसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी आशा नहीं करूँगा—मैं तो अपनेको दीन-हीन-अकिञ्चन तथा तिनकेसे भी अधिक निम्न समझूँगा।"

(जैवधर्म, अध्याय १०)

प्रश्न २—कृष्ण-कीर्तनकारी किस प्रकारके दीन होंगे?

उत्तर— तृणाधिक हीन, दीन, अकिञ्चन छार।
आपने मानबि सदा छाड़ि' अहङ्कार॥

(श्रीशिक्षाष्टक, गीत ३)

[अर्थात् समस्त प्रकारके अहङ्कारको त्यागकर स्वयंको तिनकेसे भी अधिक दीन, हीन, अकिञ्चन तथा तुच्छ मानना चाहिए।]

प्रश्न ३—स्वयंको अमानी अर्थात् सम्मान प्राप्तिकी आशासे रहित कैसे किया जा सकता है?

उत्तर—"स्वयंको दीन जानकर सबका यथायोग्य सम्मान करनेसे स्वयंको अमानी बनाया जा सकता है।"

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, अध्याय १०)

प्रश्न ४—देहधारी मानव अपनेको कैसा मानेगा?

उत्तर—देहधारी बद्धजीवका यही विचार उचित है, "मानवदेह केवलमात्र एक कारागार है। इसके साथ आत्माका अनित्य सम्बन्ध है, अतः इसमें जब तक निवास किया जाए, तब तक अपनेको तिनकेसे भी अधिक तुच्छ समझना चाहिए।"

(तत्त्वसूत्र, २३)

प्रश्न ५—शुद्ध स्वरूप-ज्ञानसे रहित व्यक्तिके लिए क्या तिनकेसे भी अधिक सुनीच होना उचित नहीं है?

उत्तर—"तृणस्य वस्तुत्वाभिमानो न न्यायविरुद्धः किन्तु विकृतस्वरूपस्य ममात्र वस्तुत्वाभिमानो न सुन्दर इति तृणादपि मम सुनीचत्वं वास्तवम्।"

(श्रीशिक्षाष्टक, सन्मोदन भाष्य, ३)

[अर्थात् तृण यद्यपि जड़वस्तु है, तथापि उसका वस्तुगत अभिमान स्वाभाविक और न्याय-सङ्गत है। किन्तु मेरा वर्तमान स्थूल-सूक्ष्म शरीरगत अभिमान शुद्ध-स्वरूप

सम्बन्धी नहीं होनेके कारण वस्तुतः ठीक नहीं है। तृणका अभिमान वास्तविक है, किन्तु मेरा जड़ाभिमान अवास्तविक है। अतः मेरे लिए तृणसे भी अधिक सुनीच होना यथार्थ ही है।]

प्रश्न ६—'अमानी' शब्दका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—"अमानिना शब्देनास्य मिथ्याभिमानशून्यतारूपं तृतीयलक्षणं निर्दिष्टम्। बद्धजीवानां स्थूललिङ्गदेहद्वयसम्बन्धयोगैश्वर्य-भोगैश्वर्य-धनरूप-जातिवर्ण-बल-प्रतिष्ठाधिकारेत्यादिजनितो यदभिमानो तन्मिथ्या—जीवस्वरूपविरोध-धर्मत्वात्। तत्तदभिमानशून्यता हि मिथ्याभिमानशून्यता। एवम्भूतमिथ्याभिमानशून्येन सर्वदा सत्यपि तत्तदभिमानहेतौ क्षान्तिगुणभूषितेन हरिनाम कीर्तनीयम्। गृहे तिष्ठन् ब्राह्मणत्वाद्यहङ्कारशून्यः, वने तिष्ठन् वैराग्यलिङ्गाहङ्कारशून्यश्च कृष्णैकचित्तो भक्तः कृष्णनाम कीर्तयति।"

(श्रीशिक्षाष्टक, सन्मोदन भाष्य, ३)

[(हरिनाम कीर्तनकारीके चार लक्षण कहे गये हैं—तृणसे भी अधिक सुनीचता, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णुता, अन्योंसे सम्मानकी कामना नहीं करना एवं अन्योंको सम्मान प्रदान करना।) अर्थात् 'अमानी' शब्दसे कीर्तनकारी साधकोंके मिथ्याभिमान-शून्यतारूप तीसरे लक्षणको सूचित किया गया है। मायाबद्ध जीवोंके स्थूल और सूक्ष्म शरीर-सम्बन्धी योगैश्वर्य, भोगैश्वर्य, धन-वैभव, रूप, जाति, वर्ण, बल, प्रतिष्ठा और अधिकारसे उत्पन्न होनेवाले जितने भी अहङ्कार हैं, वे सभी स्वरूप-विरोधी एवं झूठे हैं। इन झूठे अहङ्कारोंसे रहित होना ही 'मिथ्याभिमान-शून्यता' है। इस प्रकार उन अहङ्कारोंके रहनेका हेतु विद्यमान रहनेपर भी मिथ्याभिमान-शून्यता और सहनशीलतारूपी गुणोंसे अलंकृत व्यक्ति ही श्रीहरिनाम-कीर्तन करनेके योग्यतम अधिकारी हैं। ऐसे शुद्ध-साधकभक्त गृहस्थाश्रममें ब्राह्मण आदिका अभिमान तथा त्यागी होनेपर संन्यासी और वैरागी होनेका अभिमान—इन सबको सर्वथा परित्याग करके श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें ही अनन्य रूपसे चित्तको लगाकर श्रीकृष्णका नामसङ्कीर्तन करते हैं।]

[श्रील भक्तिविनोद वाणी-वैभवसे अनुदित]

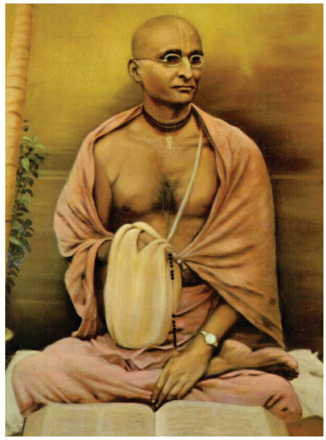

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज एवं अप्राकृत-तत्त्वके सम्बन्धमें हरिकथा

अक्षज [अर्थात् इन्द्रियग्राह्य] विचारमें Theistic thought कुछ नहीं है, उसमें वास्तव वस्तुको ही बहिष्कृत किया जाता है। हम ज्ञान-अर्जनकर्ताके रूपमें ज्ञेय-पदार्थका निर्णय करते हुए प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष—इन तीन अवस्थाओंको accomodate कर सकते हैं; किन्तु ऐसे ज्ञानमें भगवान्‌की कोई बात नहीं है। यद्यपि एक अत्यन्त आदरणीय व्यक्तिके लिए विशेष सम्मान ज्ञापनके रूपमें यथा 'भगवान् विश्वामित्र' आदि या अपने गुरुको 'भगवान्' सम्बोधनमें 'भगवान्' शब्दका प्रयोग होता है, तथापि श्रीमद्भागवतमें 'भगवान्' शब्दका व्यवहार केवलमात्र आदर प्रदान करनेके उद्देश्यसे नहीं किया गया है। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌के विशेषणके रूपमें 'अधोक्षज' (भौतिक इन्द्रिय-ज्ञानसे अतीत) शब्दका ही विशेष रूपसे व्यवहार किया गया है। इन भगवान्‌को छोड़कर जो कुछ भी अर्थात् प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष वस्तु है, उसमें अधोक्षजकी बात नहीं है। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का

श्रीश्रीसरस्वती–संलाप

श्रील प्रभुपाद और अध्यापक श्रीप्रमथनाथ मुखोपाध्याय

परिचय देते हुए 'अधोक्षज' शब्दके ही प्रति विशेष गुरुत्व (stress) प्रदान किया गया है। हम आत्माकी सम्पूर्ण प्रसन्नता प्राप्तिके विषयमें परीक्षितके द्वारा पूछे गये प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकके मुखसे सर्वप्रथम यह श्लोक सुनते हैं—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

श्रीमद्भा॰ (१/२/६)

[जीवके लिए वही परमधर्म है, जिसके अनुष्ठानसे अधोक्षज भगवान्‌में अहैतुकी अर्थात् किसी भी जागतिक कामनासे रहित और अप्रतिहता अर्थात् विघ्न–बाधारहित, नित्य–निरन्तर बनी रहनेवाली भक्तिका उदय होता है। इस भक्तिसे ही आत्मा सुप्रसन्न होती है।]

'भक्ति'—शब्दका व्यवहार अधोक्षजके अतिरिक्त किसी अन्य विचारमें—जैसे राजभक्ति, देशभक्ति, पतिभक्ति आदिमें उपयोग होनेपर वह प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष विचारके अन्तर्गत होकर बहिर्जगत्‌का ही व्यवहार–विशेष हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें भक्तिकी बात बताते हुए सब स्थानोंपर अधोक्षजकी बात ही विशेष रूपसे कही गयी है, क्योंकि एकमात्र वे अधोक्षज श्रीभगवान् ही initiative लेते हैं। कर्तृत्व, भोक्तृत्व, प्रभुत्व आदि हमारा प्रयोजनीय विषय नहीं है। अधोक्षजके प्रति भक्ति ही हमारा एकमात्र प्रयोजन है, उसीसे ही निःश्रेयस अर्थात् सर्वोत्तम—परम मङ्गल प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र भी कहा गया है—

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत्पुरुषं पूर्णं मायां च तदपाश्रयाम्॥
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतञ्चाभिपद्यते॥
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥

श्रीमद्भा॰ (१/७/४–७)

[भक्तियोगके प्रभावसे शुद्ध मनको पूर्णतया एकाग्रकर श्रीव्यासदेवजीने आत्मगत सहज समाधिमें कान्ति, अंश तथा स्वरूपशक्तिसे समन्वित श्रीकृष्णको एवं उनके पीछे गर्हित भावसे स्थित उनकी आश्रित मायाको देखा। इसी मायासे मोहित होकर जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी स्वयंको त्रिगुणात्मक अर्थात् सृष्टि, स्थिति और लयके अन्तर्गत 'प्राकृत' समझता है और इस त्रिगुणसे उत्पन्न भावनाके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है। अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—इन्द्रिय ज्ञानसे अतीत केवल भगवान्‌का अविरल भक्तियोग। परन्तु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते। यही समझकर श्रीव्यासदेवने इस परमहंसोंकी संहिता—श्रीमद्भागवतकी रचना की। इसके श्रवणमात्रसे जीवोंके हृदयमें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति ऐसी परम प्रेममयी भक्तिका उदय होता है, जिससे शोक, मोह और भय अपने आप नष्ट हो जाते हैं।]

'लोकस्याजानतः'—लोकोंके अर्थात् चतुर्दश–भुवनमय इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जानने योग्य सर्वोपरि वस्तुके जो ज्ञाता हैं, उनकी बात नहीं हो रही

है; क्योंकि *'आविरिञ्च्यादमङ्गलम्'*—विरिञ्चि अर्थात् ब्रह्माके द्वारा सृष्ट जगत्‌में जागतिक बुद्धिमत्ताके द्वारा जानने योग्य वस्तुके विषयमें जो ज्ञान-संग्रह किया जा रहा है, वह सब अनर्थसे ही परिपूर्ण है। जब तक अधोक्षज वस्तु श्रीभगवान्‌के प्रति जीवके हृदयमें भक्तियोग उदित नहीं होता, तब तक उसके अनर्थ शान्त नहीं होते—सैंकड़ों-सैंकड़ों अनर्थोंके हाथका खिलौना बनकर जीवको सुख-दुःख, भोग-त्याग रूपी द्वन्द्वकी बहुलताके कारण अत्यन्त अशान्तिपूर्ण जीवन यापन करना पड़ता है। अधोक्षज-विचारमें प्रविष्ट नहीं होनेतक प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष विचार पूरी तरहसे भ्रान्तिमय रहेंगे। अधोक्षज श्रीभगवान्‌के प्रति भक्तियोगके उदय होनेपर इस विश्वको अधोक्षजसे भिन्न पदार्थके रूपमें दर्शन करनेके कारण होनेवाली भोग अथवा त्यागकी आत्मविनाशकारी विचार-भ्रान्ति उदित नहीं होगी। प्रत्यक्ष आदि विचारोंमें जो समस्त कमियाँ हैं, वे अधोक्षजकी कृपा-वाञ्छासे युक्त होते ही दूर हो जाती हैं।

अधोक्षज-वस्तु Phenomena (प्रत्यक्ष) या Noumena (अप्रत्यक्ष) में आबद्ध नहीं है। अधोक्षज-वस्तु कभी भी आध्यक्षिक सम्प्रदायके अक्षज-ज्ञानकी पहुँचमें आनेवाली वस्तु नहीं हैं। अधोक्षज भगवान् कहते हैं—I can keep myself quite aloof from the human senses. [मैं स्वयंको मनुष्यकी भौतिक इन्द्रियोंसे पूरी तरहसे पृथक रख सकता हूँ।] अधोक्षज भगवान् हमारे visual या mental range के अन्तर्गत आ जानेवाली [इन्द्रियों अथवा मनके द्वारा ग्राह्य] वस्तु नहीं हैं। वे अपने स्वतःकर्तृत्व-धर्मके द्वारा हमारे समस्त इन्द्रियज्ञानके ऊपर प्रभुत्व विस्तार करनेमें सम्पूर्ण समर्थ हैं। श्रीजीवगोस्वामीने 'अधोक्षज' शब्दके सम्बन्धमें कहा है—*"स्वनियम्यत्वेन अधःकृतं अक्षजं इन्द्रियजं सामर्थ्यं येन सः।"* जो वस्तु हमारे इन्द्रियज-ज्ञानके अन्तर्गत हो जाए, तो उसका परमेश्वरत्व कैसे रक्षित होगा?

श्रीमद्भागवतमें 'भक्तियोगेन' नामक एक पदका व्यवहार किया गया है। जब तक हम अधोक्षजकी सेवाको नहीं समझेंगे, हमारा मन तब तक कलुषित रहेगा। अधोक्षजकी सेवा प्राप्त नहीं करने तक mental organs defective रहेंगे ही रहेंगे। हमारा ज्ञान concrete से abstructed हो रहा है। Benevolence (कृपा), piety (पुण्यशीलता) जैसे शब्द जिस क्षण हमारे brain (मस्तिष्क) की particular instance (विचार-सीमा) में प्रस्तुत होते हैं, तभी हम उनकी बात करते हैं। Elephant (हाथी) नामक एक वस्तुको मैंने देखा, और उसको अपने मस्तिष्कमें पूरा नहीं भर पानेके कारण film की भान्ति concrete की photo ले ली (उस वस्तुका एक स्थायी चित्र मैंने अपने मनमें अङ्कित कर लिया)। अधोक्षज वस्तु इस प्रकार gross या subtle, स्थूल या सूक्ष्म धारणाके अन्तर्गत आनेवाला विषय नहीं है। वह हमारे visual या mental range (नेत्रों अथवा मनकी सीमा) के अन्तर्गत नहीं आता।

भौतिक असत्-तृष्णाओं रूपी मलसे कलुषित मनमें अधोक्षज वस्तु श्रीभगवान्‌की अखण्ड परिपूर्ण धारणा करना सम्भवपर नहीं होता। अलग-अलग चार दीवारोंके जुड़नेसे एक ठोस (concrete) आकार और नहीं जुड़नेसे एक अमूर्त (abstract) आकारकी धारणा मनमें उपस्थित होती है, परन्तु पूर्णपुरुषको अपने हृदयमें सुष्ठु रूपसे धारण करना पूरी तरहसे जड़ीय मनके सामर्थ्यसे बाहरकी बात है। मन का तो धर्म ही है—'माप लेना', उस मनमें खण्डित भावकी ही प्रधानता है, इसलिए पूर्ण integer (अखण्ड पूर्णाङ्क) की धारणा उस मनमें किस प्रकारसे आ सकती है? जब नित्य-भजनीय, पूर्ण सच्चिदानन्दमय वस्तु—श्रीभगवान्‌के साथ अणु-सम्वित्, नित्यानन्दमय वस्तु—जीवात्माका, नित्य सेव्य-सेवक सम्बन्ध स्थापित होता है, अर्थात् जब जीव भगवान्‌की नित्यसेवामें नियुक्त होता है, तब यह नित्यसेवाकी वृत्ति ही उसके चञ्चल मनकी मलिनताको स्वच्छ करके भक्तिमय चित्तमें समाधिकी अवस्थाको प्रस्तुत करती है। यह नित्य-सेवोन्मुखता इन्द्रियजनित किसी भोग या निरिन्द्रिय [इन्द्रियोंकी क्रियासे रहित] त्यागकी

सहायता स्वीकार नहीं करती तथा सेवोन्मुख निर्मल आत्मा अपनी नित्यसेवावृत्तिके अनुरूप ही तदीय (श्रीभगवान्‌के) सुदर्शनके प्रभावसे (उन) पूर्णपुरुषका दर्शन प्राप्त करती है। [तात्पर्य यह है कि वे परम पूर्णपुरुष जिनको मलिन हृदयमें धारण करना असम्भव है, वे सेवोन्मुख वृत्तिके द्वारा निर्मल हुई आत्माके दृष्टिगोचर होते हैं।] पूर्णपुरुष-शब्दके द्वारा सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को ही समझना चाहिए। निराकार ब्रह्म या सर्व-व्यापक भूमा-पुरुष परमात्मा, पूर्णपुरुष श्रीभगवान्‌का आंशिक प्रकाश या असम्यक् आविर्भाव-कान्ति मात्र हैं। पूर्णपुरुष भगवान्‌का जो परमात्म-स्वरूप है, उसमें भगवान्‌की माया अपनी प्रचुर शक्तिके साथ विद्यमान है, अर्थात् उस स्वरूपमें भगवान् मायाधीश हैं। जड़-निर्विशेषसे रहित, तीन गुणोंसे अतीत, श्रीभगवान्‌का जो निर्विशेष ब्रह्म स्वरूप है, वह भगवत्ताकी असम्पूर्ण प्रकाशयुक्त कान्ति है।

श्रीराम सर्वशक्तिमान भगवान्‌की असंख्य प्रकाश मूर्तियोंमें-से एक हैं; उन श्रीरामकी मूर्तिके मूलकारण, स्वयंरूप श्रीकृष्ण हैं और उन श्रीकृष्णका ही श्रीव्यासदेवने भक्तियोगके द्वारा दर्शन किया था। व्यासदेवने '*अपश्यत् पुरुषं पूर्णं च (एवं) मायाम्*[१]' (श्रीमद्भा॰ १/७/४)—इस कथनमें पूर्णपुरुषकी पूर्णताकी हानि करते हुए, उसमें से कुछ 'deduct' (कम) कर दिया है, इसीलिए 'च' अर्थात् 'and' कहा है, ऐसा नहीं है; माया पूर्णपुरुषके अपाश्रिता अर्थात् उनके पीछे निन्दितभावसे आश्रिता है। जैसे shadow—बाधा, reflection-जातीय वस्तु है। वह original वस्तुपर आधारित ही एक वस्तु है—बिम्बका प्रतिबिम्ब अर्थात् कायाकी छाया है। मायाशक्ति अपाश्रिता है, वह direct potency नहीं है, वह भगवान्‌की स्वरूपशक्तिकी ही छायाशक्ति है। भगवान्‌की शक्ति तीन प्रकारकी है—स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति अथवा अन्तरङ्गा, तटस्था और बहिरङ्गा। "अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति जीवके भोगमय इन्द्रियज ज्ञानसे उपलब्ध होनेका विषय नहीं है। स्वरूपशक्तिकी ही विपरीत शक्ति बहिरङ्गा मायाशक्ति है। वह जीवकी हरिसेवा-प्रवृत्तिको आवृत करके आत्माको अपनी नित्य-वृत्ति भक्तिसे विक्षिप्त करती है अर्थात् उसे जन्म-मृत्युके सागरमें निपतित कर देती है। जहाँ मायाशक्ति [स्वरूपशक्ति या अन्तरङ्गाशक्ति] स्वरूपमें प्रकाशित होती है, वहीं वह प्रकाशमयी है और जहाँ वह आवरणी और विक्षेपात्मिका दो वृत्तियोंकी परिचालना करती है, वहाँ पर उसके रज और तम—दो गुणोंकी सृष्टि होती है। गुणोंके अन्तर्गत अणुचेतन अर्थात् जीवनीशक्तिसे युक्त अणुचिद् वस्तुको गुणाभिमानके रूपमें प्राप्त करनेपर वह जीवको आवृत करती है और भगवत्सेवासे विमुख करके विक्षिप्त करती है। ये दोनों कार्य भगवान्‌को प्रीतिप्रद न होनेपर भी माया या भगवद्-बहिरङ्गा शक्ति यह सेवा करती है। जिन सभी जीवोंकी हरिविमुखताकी योग्यता है, माया उनके लिये ही भोग्य होकर अनेक रूपोंमें प्रकाशित होती है। माया या बहिरङ्गाशक्तिका शक्तिमान-तत्त्वसे स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह भगवान्‌की ही आश्रिता है, किन्तु सेवोन्मुख जीव जिस प्रकार मुख्यसेवामें निरत होकर आदरके साथ अवस्थित हैं, बहिरङ्गा मायाशक्ति उस प्रकारसे अवस्थित नहीं है। माया भगवान्‌के प्रिय जीवोंको भगवान्‌से विक्षिप्त करके आवृत करती है, इसलिये भगवान् बहिरङ्गा शक्तिको सर्वप्रधाना शक्तिकी पदवी प्रदान नहीं करके अपकृष्ट भावसे आश्रय दिया करते हैं। भगवदाश्रयसे भी विच्युत होनेकी योग्यता उसमें नहीं है। इसलिए उसको अपकृष्ट रूपसे आश्रिता रहना पड़ता है।"

क्रमशः

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

---

[१] भक्तियोगेन मनसि समयक् प्रणिहिते मले। अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्॥ (श्रीमद्भा॰ १/७/४)

अर्थात् भक्तियोगके प्रभावसे श्रीवयासदेवका मन पूर्णतः एकाग्र और निर्मल हो गया। तब उन्होंने लीला-परिकरोंके साथ पूर्णपुरुष श्रीकृष्णका दर्शन किया और उनके पृष्ठ भाग (पीछे)में लज्जित भावसे आश्रय लेकर खड़ी बहिरङ्गा मायाको भी देखा।

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र–१७)

निष्ठाके साथ चातुर्मास्यादि व्रत–पालन करते हुए कृष्णके लिए अखिल चेष्टा–युक्त होना होगा

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी–वैभव

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला,
पोः–मथुरा (उः प्रः)
दिः–३०/१/१९६२

स्नेहके पात्र

---! **** अमुक व्यक्तिके घरबार त्यागकर जाते समय तुम जाकर उनके घरको अपने अधीनकर हमारे लिए व्यवस्था करते तो अच्छा होता। हमारे भक्तलोग इस प्रकारके सांसारिक विषयी कार्योंको करनेमें प्रवीण नहीं हैं। तुम्हारे हरिसेवा कार्यमें इस प्रकारसे उदासीन होनेसे कैसे चलेगा? कार्यका समय निकल जानेपर उसमें अनेक समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं।

---प्रभुके विचार जो मैं लोगोंके मुखसे सुन रहा हूँ, वे वेदान्त–समितिके भक्ति–प्रचारके अनुकूल नहीं हैं। तुम उनके विचारोंसे प्रभावित नहीं होना। श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए अखिलचेष्टा–युक्त नहीं होनेपर राधारानीकी कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती। भगवान्के लिए कष्ट स्वीकार करना ही भक्तिका लक्षण है। केवल सुख–सुविधा ढूँढ़नेमें व्यस्त रहना इन्द्रियतर्पण कहलाता है। सब प्रकारसे भगवान्की सेवा करना आवश्यक है।

तुम्हारे यहाँ चातुर्मास्य आदि व्रत पालन करते समय अनेक लोग विश्रामका ही अवसर ढूँढ़ते हैं। [कुछेक गृहस्थ व्यक्ति, यह सोचकर कि व्रतके नियम

"श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए अखिलचेष्टा-युक्त नहीं होनेपर राधारानीकी कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती। भगवान्‌के लिए कष्ट स्वीकार करना ही भक्तिका लक्षण है। केवल सुख-सुविधा ढूँढ़नेमें व्यस्त रहना इन्द्रियतर्पण कहलाता है।"

केवल त्यागियोंके लिए हैं, व्रत पालनसे विरत रहनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु] यह श्रील प्रभुपाद तथा श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित प्रचारके विरुद्ध है। तुम इन सब कार्योंका अनुमोदन मत करना तथा उन्हें प्रश्रय भी मत देना। हरिभक्तिविलासकी विधि समस्त गृहस्थ व्यक्तियोंके लिए अवश्य ही पालनीय है। हरिभक्तिविलास किसके लिए लिखा गया है, यह श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील गोपालभट्ट गोस्वामीने इस ग्रन्थके प्रारम्भमें मुखबन्धमें ही लिख दिया है। "गृहस्थ भक्तोंको अपने कार्य-स्थलपर बहुत परिश्रम करना पड़ता है"—ऐसा सोचकर व्रतादि पालन नहीं करना अत्यन्त ही अनुचित तथा अपराधजनक है। वेदान्त-समितिके वैशिष्ट्यको नष्ट करना कभी भी उचित नहीं है। श्रील प्रभुपादके संन्यासी शिष्योंमेंसे किसी-किसीके व्रत आदिके पालनमें विमुख होनेपर उन्हें कभी भी आदर्शके रूपमें ग्रहण नहीं किया जा सकता। इति—

नित्यमङ्गलाकाङ्क्षी,

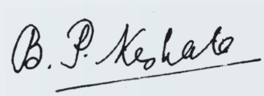

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-४२, संख्या-३ से अनुदित)

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका उनतीसवाँ वर्ष

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपं
रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्।
राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिकामाधवाशां
प्राप्तो यस्य प्रथितकृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि॥

[जिनकी अपार कृपाके फलस्वरूप मुझे सर्वश्रेष्ठ श्रीहरिनाम, दीक्षा-मन्त्र तथा शचीनन्दन श्रीमन्महाप्रभु, श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातन, विशाल श्रीमथुरापुरी, श्रीव्रज, श्रीराधाकुण्ड, श्रीगिरि-गोवर्धन एवं श्रीश्रीराधा-माधवके चरणोंकी प्रेमपूर्ण सेवा करनेकी आशा प्राप्त हुई है, उन श्रीगुरुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।]

यस्यैव पादाम्बुज-भक्तिलभ्यः,
प्रेमाभिधानः परम-पुमर्थः।
तस्मै जगन्मङ्गल-मङ्गलाय,
चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते॥

[एकमात्र जिनके श्रीचरणकमलोंकी भक्तिके द्वारा ही परम पुरुषार्थ श्रीकृष्ण-प्रेमका भण्डार प्राप्त होता है, समस्त जगत्के मङ्गल-स्वरूप, उन परम मङ्गलमय श्रीचैतन्य देवको मैं प्रणाम करता हूँ।]

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम्॥

[श्रीमती राधारानीके मान करनेपर उनके विरहमें अतिशय निमग्न होनेसे जिनकी कृष्णवर्णरूप कान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधा जैसी (गौर वर्ण) हुई थी, उन श्रीराधाकी कान्तिसे युक्त-विग्रह—श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ। अथवा मान भङ्ग होनेपर श्रीमती राधाके द्वारा आलिङ्गित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी वन्दना करता हूँ।]

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषद् स्वैः दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्॥

जो समस्त जनगण [प्राणियों] में अन्तर्यामीके रूपमें निवास करते हैं अथवा गोप-यादव आदि जनोंमें जिनकी अवस्थिति हैं अथवा जो प्रत्येक जीवमात्रके ही आश्रय हैं, 'देवकीके उदरसे जन्म' जिनके लिए केवल वाद मात्र है, वस्तुतः जो अजन्मा अर्थात् प्राकृत जन्म-रहित हैं, श्रेष्ठ-श्रेष्ठ यदु जिनके सेवक हैं, अथवा जो यादवोंके अधिपति हैं, इच्छामात्रसे विनाश करनेमें समर्थ होनेपर भी जो अपने बाहुबलसे अथवा अपने ही समान बलवाले अर्जुनादि भक्तोंके द्वारा धर्म-विरोधी असुरोंका संहार करनेवाले हैं, जो स्थावर-जङ्गमके

संसाररूप पापोंका हरण करनेवाले हैं अथवा जो व्रज-पुरमें स्थित अपने सेवकोंके विरह-दुःखको हरण करनेवाले हैं, तथा जो मन्द मुस्कानसे युक्त अपने सुन्दर मुखारविन्दके द्वारा व्रजपुरीकी वनिताओंके हृदयमें कामका सञ्चार करनेवाले हैं, ऐसे श्रीकृष्ण जययुक्त हों! देवकीनन्दन, वृष्णि-वंशके प्रदीप, कोमल अङ्गोंवाले नवजलधर श्याम, पृथ्वीके भारका हरण करनेवाले मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्र जययुक्त हों!

वर्ष शब्दके विभिन्न अर्थ

"श्रीगौड़ीय पत्रिका" ने उनतीसवें वर्षमें शुभ-पदार्पण किया है। भारतवर्षीय समय गणनाके अनुसार एक वर्ष समाप्त हुआ। आर्यपुरुष-ऋषियोंके मतानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपोंमें विभाजित है, यथा—जम्बु, प्लक्ष, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर और शाल्मली। प्रत्येक द्वीप पुनः अनेक खण्डोंमें विभाजित है। इन समस्त खण्डोंको ही 'वर्ष' कहा जाता है। जम्बुद्वीप नौ खण्डों अथवा वर्षोंमें विभाजित है—भारत, किंपुरुष, हरि, कुरु, हिरण्मय, रमणक, इलावृत, भद्राश्व एवं केतुमाल। जम्बुद्वीपके अन्तर्गत जिस खण्ड अर्थात् वर्षमें ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्र भरत नामके राजाने शासन किया था, वह वर्ष 'भारतवर्ष' के नामसे विख्यात हुआ है—"*विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्*।" (श्रीमद्भा॰ ११/२/१७)

ज्योतिष-शास्त्र वेदके अङ्ग एवं अधोक्षज-तत्त्वके निर्देशक

वर्षीयान्—ज्ञान-वयोवृद्ध त्रिकालज्ञ आर्यऋषिगण श्रेष्ठ देवज्ञ एवं ज्योतिषी थे। उपनिषद्, वेदान्त, पुराण, इतिहास, महाभारत आदि काव्योंकी रचना उनका ही अतुलनीय अवदान है। ज्योतिष-शास्त्र वेदोंका अङ्ग है। इसके द्वारा अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे अतीत) वस्तुका ज्ञान प्राप्त होता है—"*ज्योतिषामयनं साक्षात् यज्-ज्ञानमतीन्द्रियम्*"। यद्यपि भौतिकतावादी मनुष्य इस शास्त्रके आधारपर पूर्व जन्ममें किये कर्मों एवं वर्तमान जन्ममें उन कर्मोंके भविष्यमें होनेवाले फलोंके विषयमें जान सकते हैं, किन्तु आर्य-ऋषिगणोंने इसके द्वारा प्राकृत स्थान-काल-पात्रकी गणना नहीं करके अप्राकृत-तत्त्वका ही ज्ञान प्रदान किया है। "*स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे*"[1] (श्रीमद्भा॰ १/२/६), "*अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे*"[2] (श्रीमद्भा॰ १/७/६), "*तं ब्रह्म परमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम्*"[3] (श्रीमद्भा॰ १०/२३/११), "*धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे*"[4] (श्रीमद्भा॰ १०/२३/४०) इत्यादि वाक्योंके द्वारा शास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवतम्—जो कि वेदरूपी कल्पवृक्षका सुपक्व फलस्वरूप है, परमहंसीय संहिता है, समस्त वेदान्तका सार है एवं गायत्रीका भाष्य स्वरूप है—में अतीन्द्रिय अधोक्षज भगवद्-तत्त्वका ही निर्देश एवं उसकी ही प्रधानता स्थापित की गयी है।

आश्रय एवं आश्रित-तत्त्वका वैशिष्ट्य

श्रील श्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतम्के (१०/१/१) श्लोककी भावार्थ दीपिका टीकामें वर्णन किया है—आश्रित व्यक्तियोंके आश्रय-विग्रहस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही लक्षित हुए हैं। उन कृष्ण नामात्मक परम-धाम एवं जगत्-धामको मैं नमस्कार करता हूँ। श्रीमद्भागवतम्के (२/१०/१) श्लोकमें सर्गसे आरम्भकर आश्रय तक दस लक्षणोंका वर्णन हुआ है। [*अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः। मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥*] इनमेंसे सर्गसे लेकर मुक्ति तक—नौ तत्त्व आश्रित तत्त्व हैं तथा दसवाँ आश्रय तत्त्व है। समस्त अवतार, शक्ति, जैव एवं जड़-जगत्

१ मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे अतीन्द्रिय अधोक्षज भगवान् (श्रीकृष्ण) में भक्ति हो।

२ अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात्-साधन है—केवल अतीन्द्रिय भगवान्का अविरल भक्तियोग।

३ वे (श्रीकृष्ण ही) परमब्रह्मरूपी साक्षात्-भगवद्-विग्रह अधोक्षज हैं।

४ जो अधोक्षज भगवान् (श्रीकृष्ण)से विमुख हैं, उनके उच्चकुलको धिक्कार है और उनकी कर्म-काण्डोंमें निपुणताको धिक्कार है।

कृष्णरूपी परम आश्रयके आश्रित हैं। जिनके द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होती है, जिनके द्वारा विश्व प्रकाशित होता है, वे ही परब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण परिपूर्ण-स्वरूप हैं, परन्तु साधारण लोग उनकी पूर्णताकी उपलब्धि नहीं कर पाते हैं।

विषय-विग्रह श्रीकृष्णचन्द्र ही परमाश्रय-स्वरूप

श्रीपत्रिकाका उनतीसवें वर्षमें प्रवेश विशेष तात्पर्यपूर्ण है। श्रीमद्भागवतका दशम स्कन्ध श्रीकृष्णका प्रफुल्ल मुखारविन्द है एवं दशम स्कन्धके उनतीसवें अध्यायसे श्रीभगवान्‌की मधुर रतिका वर्णन आरम्भ हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र पूर्ण पाँच रसोंके अधिदेवता हैं, यही निम्नलिखित श्लोकमें सुप्रकाशित हुआ है—

श्यामेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥

पद्यावली (८२), चै॰ च॰ मध्य॰ (१९.१०६)

[श्याम रूप ही सर्वश्रेष्ठ रूप, मधुपुरी ही श्रेष्ठ पुरी, किशोरावस्था ही ध्यान-योग्य और आद्य अर्थात् शृङ्गाररस ही श्रेष्ठ रस है।]

श्रीकृष्णने योगमायाका आश्रय लेकर जब वंशी बजाना आरम्भ किया तब उस वंशी-ध्वनिको सुनकर गोपियाँ अपने-अपने गृहके कार्योंको समाप्त किये बिना ही निर्बाध गतिसे उनसे मिलनेके लिए पहुँच गयीं। श्रीकृष्ण गोपियोंसे उनके आनेका कारण पूछते हुए अत्यन्त रहस्यपूर्ण ढङ्गसे कहने लगे—तुम्हारा हिंसक प्राणियोंसे परिपूर्ण इस वनमें ठहरना उचित नहीं है, पति-पुत्र आदिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका धर्म है। [यदि तुम मेरे प्रति अत्यधिक स्नेहसे वशीभूत चित्तवाली होकर ही यहाँ आयी हो, तो यह तुम्हारे लिए उचित ही है, क्योंकि प्राणीमात्र ही मुझसे प्रीति करते हैं। मेरे विषयमें श्रवणसे, मेरी श्रीमूर्तिके दर्शन और मेरे रूपका ध्यान तथा निरन्तर मेरे नाम-गुणादिके कीर्तन द्वारा मेरे प्रति जिस प्रकार भावका उदय होता है, वैसा मेरे अत्यन्त समीप रहनेसे नहीं होता। अतएव तुम अपने-अपने घरोंमें लौट जाओ।]

तब गोपियाँ अपना मनोरथ असफल होता देखकर रोते हुए कहने लगीं—[हे विभो! प्यारे श्रीकृष्ण! तुम सर्वव्यापी हो, इसलिए हमारे हृदयकी बात भी जानते हो। तुम्हारे द्वारा इस प्रकारके निष्ठुर वचन कहना उचित नहीं है। हम लोग सभी विषयोंका त्याग करके केवल तुम्हारे चरणोंसे ही प्रेम करनेवाली सेविकाएँ हैं। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं है कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो तथा तुम पर हमारा कोई बस नहीं है, तथापि जैसे आदि पुरुष नारायण कृपापूर्वक संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले जनोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम भी हमें अपनी चरण-सेवा प्रदानकर हमें स्वीकार करो, हमारा त्याग मत करो।] तुम्हारे द्वारा तुम्हारी सेवाका सङ्कल्प ग्रहण करनेवाली हम गोपियोंका परित्याग करना उचित नहीं है। [हे प्यारे! तुम समस्त धर्मोंका रहस्य जानते हो। 'पति, पुत्र और बन्धुजनोंकी यथायोग्य सेवा करना ही स्त्रियोंके लिए स्वधर्म है'—धर्म-तत्त्वको जाननेवालेकी भाँति तुमने यह जो उपदेश दिया है, उसके अनुसार हमें उपदेशकर्त्ता तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि तुम ही सभी उपदेशोंके चरमलक्ष्य साक्षात् भगवान् हो, अर्थात् तुम्हारी सेवा करनेसे ही पति-पुत्रादिकी सेवा करना हो जाएगा, क्योंकि तुम ही समस्त शरीरधारियोंके प्रियतम, बन्धु और आत्मा हो। हे प्रियतम! शास्त्र ज्ञानमें निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं, क्योंकि परमबन्धुके रूपमें तुम्हीं सबके नित्य प्रिय हो। अनित्य] पति-पुत्र आदिकी सेवासे केवल मात्र दुःख ही प्राप्त होता है, परन्तु समस्त प्राणियोंके प्रियतम आत्मा, तुम्हारी सेवासे स्वधर्मकी सिद्धि होती है। तुम्हारी वंशीका गान श्रवण एवं तुम्हारे तीनों लोकोंके वासियोंके चित्तको आकर्षित करनेवाले रूपका दर्शन करनेके लिए कौन-सी रमणी उत्कण्ठित नहीं है? तुम तो व्रजवासियोंके दुःखोंका विनाश करनेवाले हो, अतएव आर्त-गोपियोंके विरह-सन्तापको दूर करना तुम्हारा एकमात्र कर्त्तव्य है। गोपियोंके इन विलाप-वचनोंको श्रवणकर श्रीकृष्णने विभिन्न क्रीड़ाओंके द्वारा गोपियोंको आनन्द प्रदान किया, किन्तु गोपियोंमें अपने

परम सौभाग्यसे उदित गर्व एवं मानको देखकर उसका निवारण करनेके लिए तथा उनपर कृपा करनेके लिए दर्पहारी मधुसूदन यमुना-पुलिनमें अन्तर्ध्यान हो गये। [श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका उनतीसवाँ अध्याय यहीं समाप्त होता है।]

श्रीभगवान् द्वारा असुरोंको मोहित करना एवं उनकी लीलाओंका अप्राकृतत्व

श्रीभगवान् द्वारा अपनी भौम अर्थात् प्रकट-लीलाका सङ्गोपन करनेके उद्देश्यसे समस्त यदुकुलके विनाशका वृत्तान्त शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है। प्रभासमें समुद्रके तटपर अपने योगबलके द्वारा श्रीबलदेवका निर्याण तथा जरा नामक व्याधके बाणसे बिद्ध होकर श्रीकृष्णकी तिरोधान लीला, उनकी अपनी मायाके द्वारा घटित हुई है, ऐसा समझना होगा। इसीलिए यह श्लोक कहा गया है—

जगतो मोहनार्थाय भगवान् पुरुषोत्तमः।
दर्शयेन्मानुषीं चेष्टां तथा मृतकवद्विभुः॥

जो समस्त देवतागण भगवद्-इच्छाके अनुरूप कृष्ण-लीलामें सहायताके लिए यदुकुलमें आविर्भूत हुए थे, वे सभी निज-धामको चले गये। भगवान्के द्वारा समस्त जीवोंकी सृष्टि एवं उनके संहारकी समस्त क्रिया नर्तकके अभिनयके समान एक विड़म्बना (नाट्य रचना) मात्र है। यही परम पुरुष भगवान् स्वयं ही इस संसारकी सृष्टि करके अन्तर्यामीके रूपमें इसमें प्रवेश करते हैं, तथा पुनः प्रलयके समय अपने भीतर ही उसका संहार करके निज कौशल द्वारा ही इस संसार-लीलासे निवृत्त होते हैं। अचिन्तनीय शक्तिशाली भगवान् श्रीकृष्ण चराचर इस विश्वकी सृष्टि-स्थिति-संहारकार्यके निरपेक्ष कारण-स्वरूप हैं।

जो अपने गुरुदेवके पुत्रको यमलोकसे सशरीर अपने माता-पिताके पास लौटा लाये थे, जिन्होंने सुतलपुरीसे देवकीके छः पुत्रोंका उद्धारकर उन्हें अपनी माताको प्रदान किया था, जो महाकालपुरसे (द्वारकाके एक) ब्राह्मणके मृत पुत्रोंको लौटा लाये थे, जिन्होंने शरणागत-रक्षकके रूपमें ब्रह्मास्त्रसे दग्ध विष्णुरात[५] परीक्षितकी माताके गर्भमें रक्षा की थी, जिन्होंने युद्धमें मृत्युञ्जय शिवको पराजित किया था, जिन्होंने जरा नामक व्याधको सशरीर वैकुण्ठमें भेज दिया था, ऐसे श्रीकृष्ण निश्चित रूपसे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ नहीं हैं।

इस पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए अधोक्षज भगवान्, जो देह एवं देहीकी भिन्नतासे रहित हैं एवं अप्राकृत नाम, रूप आदिसे युक्त हैं, इस भौतिक संसारमें अवतरित होते हैं। किन्तु मायाबद्ध जीव उन भगवान्को जड़ीय देश-कालके अन्तर्गत ही समझते हैं एवं मूर्खतावश उनकी चिन्मय भौम-लीलाकी अवहेलना करते हैं। श्रीकृष्ण-लीलापर विचार प्रकट करते हुए अनेक इतिहासकार एवं साहित्यकार उन्हें एक साधारण मनुष्य मानकर उनके प्रति प्राकृत बुद्धि करते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको यह समझ नहीं आता कि—

प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर।
विष्णु-निन्दा नाहि आर इहार उपर॥

चै॰ च॰ आदि॰ (७.११५)

जो श्रीविष्णुके चिन्मय देहको प्राकृत अर्थात् जड़ीय मानते हैं, [वे चरम अपराधी हैं।] श्रीविष्णुकी इससे बढ़कर निन्दा और कोई नहीं है।

श्रीकृष्णकी जन्म, अप्रकट आदि लीलाओंको जड़ीय बुद्धिसे समझ लेनेका प्रयास करनेसे नरक-गमन अवश्यम्भावी है। कृष्णके चरित्रमें राजनीति देखने (अर्थात् कृष्ण राजनीति करनेवाले व्यक्ति हैं) एवं उनमें चरित्रहीनताका आरोप करनेसे नरक जाना पड़ेगा। श्रीभगवान्के चिन्मय स्वरूपको नष्ट करनेकी वासना ही जीवको निर्विशेषवादी, मायावादी बना डालती है। भगवान्का श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है, उनके नाम-रूप-गुण-लीला नित्य एवं अप्राकृत हैं, इस प्रकारके विचारके द्वारा ही आत्मकल्याण प्राप्त होता है।

५ श्रीपरीक्षित महाराजका अन्य नाम, श्रीविष्णुके द्वारा सदा रक्षित

कर्मी-ज्ञानी-योगियोंकी प्रचेष्टा निरर्थक; भक्ति ही श्रेष्ठ साधन

भगवान्‌की मायासे विमोहित कुकर्मी, कुज्ञानी एवं कुयोगीगण भगवान्‌के चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करना नहीं चाहते। विवेकशील बुद्धिमान व्यक्ति ही भजन-साधनमें नियुक्त होते हैं। भगवान् अन्तर्हृदयमें चैत्यगुरुके रूपमें और बाहरसे आचार्यके रूपमें जीवके समस्त अमङ्गलोंको दूर करके उसे अपने स्वरूपका दर्शन कराते हैं। भक्तजन भगवान्‌की प्रीतिके उद्देश्यसे ही समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। भक्त सर्वत्र ही समदृष्टि सम्पन्न होकर अपने काय-मन-वचनके द्वारा ईश्वरकी आराधना करते हैं। भक्त अनन्यभावसे आत्मसमर्पण करनेपर भगवान्‌के प्रिय बनते हैं एवं इसके द्वारा ही वे अमृतत्व प्राप्त करते हैं। श्रीभगवान्, भक्त एवं भक्ति—नित्य हैं। श्रीभगवान्‌के नाम-रूप-गुण और लीला-कथाओंके श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि अनुशीलनके द्वारा भक्तकी अभीष्ट सिद्धि होती है।

भगवत्-कथाका श्रवण-कीर्तन करनेके अधिकारी एवं अनधिकारीका निर्णय

श्रद्धालु व्यक्तियोंको ही हरिभक्तिका वितरण करना उचित है। शास्त्रोंमें अश्रद्धालु व्यक्तिको श्रीकृष्णके नामोंकी महिमाका उपदेश देनेके लिए निषेध किया गया है—

अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति यश्चोपदेशः
शिवनामापराधः।

(पद्मपुराण)

[श्रद्धाहीन और नाम-श्रवण करनेसे विमुख मनुष्यको नामका उपदेश देना नामापराध है।]

"*श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्*"—गीता (४.३९) [श्रद्धावान व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करते हैं।]; अतएव अश्रद्धालु व्यक्तिको नामका उपदेश करना नामापराधके ही अन्तर्गत है। दाम्भिक, वञ्चक, नास्तिक, श्रवणकी इच्छासे रहित, अभक्त एवं अविनीत व्यक्तिको तत्त्वका उपदेश देनेके लिए निषेध किया गया है। जो पूर्वोक्त दोषोंसे रहित हैं, ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, प्रिय, साधु-स्वभावयुक्त एवं शुद्ध-चित्तवाले हैं, उनको तथा शूद्र एवं स्त्रियाँ यदि भक्तियुक्त हैं, तो उनको भगवद्-भक्तिका उपदेश देनेका विधान है। प्राकृत गुणोंके आधारपर निर्धारित वर्ण-धर्म (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रधर्म) का परित्याग किये बिना भगवद्-सेवोन्मुखताको प्राप्त नहीं किया जा सकता एवं भगवद्-भक्तिकी कथा करनेका अधिकार उत्पन्न नहीं होता।

आम्नाय-धारा अथवा श्रौत-परम्परा एवं आशीर्वाद प्रार्थना

विश्वसाक्षी भगवान् वासुदेवने कृपापूर्वक श्रीब्रह्माको तत्त्वोपदेश किया था, उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माके रूपमें श्रीनारदके निकट, श्रीनारदके रूपमें महर्षि वेदव्यासके निकट, श्रीवेदव्यासके रूपमें योगीन्द्र श्रीशुकदेवके निकट, एवं श्रीशुकदेवके रूपमें महाराज परीक्षितके निकट कृपापूर्वक उस उपदेशका प्रकाश किया। परमकरुण श्रीव्यासदेवकी परम्परामें एवं उनके अनुयायियोंकी शृंखलामें साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रने ही सार्वकालिक जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण चैतन्यके रूपमें बद्धजीवोंके लिए ऐसी अमन्दोदय (सर्वदा शुभ प्रदान करनेवाली) करुणाका विस्तार किया है जो पहले कभी प्रदान नहीं की गयी। श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं—वे उपदेशके द्वारा जीवके संसार-भयको दूर करते हैं और सेवाविमुख जीवोंको कृष्ण-प्रेम प्रदान करते हैं। वे वेद-शास्त्रोंके प्रणेता हैं और सारग्राही वैष्णवोंको उन्होंने वेदोंका सार प्रदान किया है। लौकिक-व्यवहारिक देहधर्म एवं मनोधर्मका परित्याग करके उस सार सन्देशको श्रवण करना एवं ग्रहण करना ही जीवोंका एकमात्र कर्त्तव्य है।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै श्रीकृष्णाय नमो नमः।
कृपार्णवाय श्रीदयितदासाय प्रभवे नमः॥
कृष्णचैतन्य गौराङ्ग साङ्गोपाङ्ग सपार्षद।
निरुपाधे कृपासिन्धो प्रेम्ना मां परिपूरय॥
श्रीगोवर्धनाय हरिदासवर्याय नमः।
श्रीराधाकुण्डाय श्रीकृष्णकुण्डाय नमः॥

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-२९, संख्या-१ से अनुदित)

वास्तविक शिष्य कौन है?

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

(द्वारा ३१ जनवरी, २००१ को पर्थ, आस्ट्रेलियामें दी गयी हरिकथाके आधार पर)

देवराज इन्द्र और दैत्यराज विरोचनकी ब्रह्माजीसे आत्म-ज्ञानकी जिज्ञासा

एक समय स्वर्गके राजा इन्द्र और दैत्यराज विरोचन, दोनों आत्म-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रीब्रह्माके पास गये। श्रीब्रह्माने उनसे पूछा, "आप दोनों मेरे पास किस उद्देश्यसे आये हैं?"

देवराज इन्द्र और दैत्यराज विरोचन दोनोंने एक ही उत्तर देते हुए कहा, "हम सर्वदा प्रसन्न रहना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि कोई भी कभी हमें पराजित न कर सके, हमारे ऊपर अपना नियन्त्रण न कर सके, तथा हमारी मृत्यु कभी भी न हो।"

श्रीब्रह्माने उत्तर दिया, "यह विषय अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण एवं गम्भीर है। इसके लिए पहले तुम्हें मेरे पास वास करना होगा और मेरी आज्ञाका पालन करना होगा। ब्रह्मचर्य व्रतका दृढ़तासे पालन करते हुए, स्त्रीसङ्गसे दूर रहना होगा। इस प्रकार बत्तीस वर्ष तक यहाँ मेरे गृहमें रहकर सेवा करनेके पश्चात् ही मैं तुम्हें कुछ ज्ञान प्रदान करूँगा, अन्यथा तुम मेरे उपदेशोंको सुनकर भी उन्हें समझकर धारण करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं कर पाओगे। तुम मेरी शिक्षाओंको भलीं-भाँति समझनेकी अपेक्षा मेरे वचनोंका कुछ अन्य अर्थ ही ग्रहण करोगे, जो मेरे अभिप्रायके विरुद्ध होगा।"

इन्द्र और विरोचन दोनोंने श्रीब्रह्माके इस नियमको स्वीकार कर लिया, और वे सभी प्रकारके इन्द्रिय भोगोंका त्यागकर श्रीब्रह्माके निकटमें रहकर सब प्रकारसे सेवा करने लगे। केश एवं नखोंको न काटना, ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना, जड़ीय भोगोंसे दूर रहना, प्रातः काल शीघ्र उठना, अल्प समयके लिए शयन करना आदि अनेक कठोर नियमोंका उन्होंने बत्तीस वर्ष तक दृढ़तापूर्वक पालन किया। इसके पश्चात् वे दोनों श्रीब्रह्माके निकट उपस्थित हुए और उनसे अनुरोध किया, "हे गुरुदेव, कृपया हमारा मार्गदर्शन करें। हम कैसे प्रसन्न रह सकते हैं? आत्म-तत्त्वको कैसे समझ सकते हैं कि मैं कौन हूँ और किस प्रकार सरलतासे जन्म, मृत्यु आदि दुःखों एवं कष्टोंसे निवृत्ति प्राप्त कर सकते हैं?"

श्रीब्रह्माने इन्द्र एवं विरोचनसे कहा, "विषय-वासनाओंसे रहित महायोगीगण अपने नेत्रोंके मध्यमें जिस पुरुषका दर्शन करते हैं, वही आत्मा है। वही अभय एवं अमृत-स्वरूप ब्रह्म-वस्तु है।" इन्द्र एवं विरोचन श्रीब्रह्माके इस वचनका तात्पर्य नहीं समझ पाये और उन्होंने पुनः जिज्ञासा की, "जल और दर्पणमें हमारा जो प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, उसमें हमारी आत्मा कहाँपर विराजित है?" श्रीब्रह्माने कहा,

"सम्पूर्ण शरीरमें ही वह आत्मा दिखायी देती है। तुम जलसे भरे एक पात्रमें अपनी-अपनी आत्माको देखो, और यदि इस विषयमें कुछ समझ नहीं आये तो मुझे बताओ।" दोनोंने जलके पात्रमें अपने प्रतिबिम्बको देखा, तब श्रीब्रह्माने उनसे पूछा, "तुम्हें क्या दिखायी दिया?" इसके उत्तरमें दोनोंने कहा, "हे भगवन्! हमने सिरके केशोंसे लेकर पाँवोंके नखों तक आत्माकी सम्पूर्ण छविका दर्शन किया।"

श्रीब्रह्माने कहा, "तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। इसी समय जाकर मुण्डन कराओ, नाखून काटो और स्नान आदिके पश्चात् स्वच्छ वस्त्र धारण करके एक सुन्दर, सभ्य व्यक्तिके रूपमें मेरे समक्ष उपस्थित होओ।"

इन्द्र एवं विरोचनने श्रीब्रह्माके आदेशका पालन किया एवं सुन्दर सुसज्जित वेशमें उनके पास आये। श्रीब्रह्माने कहा, "जलके पात्रमें स्वयंको देखो।" उन्होंने वैसा ही किया। श्रीब्रह्माके यह पूछनेपर कि, "तुम्हें क्या दिखायी दिया?" उत्तरमें दोनोंने कहा, "हे भगवन्! हमने सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणोंसे सुसज्जित अपने शरीरकी प्रतिछविका जलमें दर्शन किया।"

दैत्यराज विरोचनका शरीरको ही आत्मा मानना एवं देवराज इन्द्रका इसके प्रति संशय

श्रीब्रह्मा समझ गये, "इन्हें अभी भी मेरे वचनका अर्थ ठीकसे समझ नहीं आया। सम्भवतः भविष्यमें ये वास्तविक सत्यकी अपने हृदयमें उपलब्धि कर पाएँगे।" यह विचार करते हुए श्रीब्रह्माने इन्द्र एवं विरोचनसे कहा, "जलमें जिसके प्रतिबिम्बका तुमने दर्शन किया, वही आत्मा है। वही अभय एवं अमृत-स्वरूप है, वही ब्रह्म है।" यह सुनकर इन्द्र एवं विरोचन दोनोंने अपने-अपने घरके लिए प्रस्थान किया। वे दोनों ऐसा सोचते हुए कि "हमें जगद्गुरु श्रीब्रह्मासे दिव्य-ज्ञानकी प्राप्ति हो गयी है", बड़े सन्तुष्ट हुए।

दोनोंको अपने-अपने घर वापिस जाता देखकर श्रीब्रह्माने मनमें विचार किया, "आत्माकी उपलब्धि किये बिना ही, आत्म-तत्त्वसे अवगत हुए बिना ही ये दोनों वापिस जा रहे हैं। देवता अथवा असुर, जो भी इनसे आत्म-तत्त्वके विषयमें उनके भ्रमपूर्ण विचारको ग्रहण करेगा, वही विपथगामी होकर विनाशको प्राप्त होगा।"

अपने राज्यमें वापस आकर दैत्यराज विरोचनने सर्वत्र यह घोषणा कर दी कि "मैं आत्मासे सम्बन्धित वास्तविक ज्ञानको जान गया हूँ कि यह शरीर ही आत्मा है। इसलिए किसी भी प्रकारसे, हमें इस शरीरको प्रसन्न रखना चाहिये, यहाँ तक कि मदिरापान आदिके द्वारा भी, इसमें कोई हानि नहीं है। समस्त चेष्टाओंके द्वारा हमें इस शरीरको सन्तुष्ट रखना चाहिए।" विरोचन अन्योंको भी इसी सिद्धान्तकी शिक्षा देने लगा और इसमें ही वह पूर्ण सन्तुष्ट था।

वहीं दूसरी ओर देवराज इन्द्र जब गुरुकुल अर्थात ब्रह्माजीके लोकसे अपने राज्यमें जा रहा था तब उसके मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ जिसके कारण वह पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट नहीं था। उसने यह विचार किया, "श्रीब्रह्माने हमें ऐसा क्यों कहा? हमने तो यह सुना है और श्रीब्रह्माने भी पूर्वमें हमें ऐसी ही शिक्षा दी है कि आत्माकी कभी मृत्यु नहीं होती, वह सदा ज्ञानसे परिपूर्ण है। उसका स्वरूप कभी परिवर्तित नहीं होता। आत्मा कभी भी अप्रसन्न नहीं होती। किन्तु फिर भी हमारे गुरुदेव श्रीब्रह्माने कहा कि, 'जलमें जिसके प्रतिबिम्बका तुमने दर्शन किया, वही आत्मा है।' परन्तु मैं तो यह देखता हूँ और अनुभव भी करता हूँ कि कैसे जन्मसे ही इस शरीरमें (जिसके प्रतिबिम्बका ही मैंने दर्शन किया) अनेक परिवर्तन होते हैं। पहले शिशु एक दिनका होता है, फिर पाँच वर्ष का, फिर दस वर्षका होता है। ऐसे ही व्यक्ति धीरे-धीरे बाल्यावस्थासे युवावस्था पारकर वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है और अन्तमें शरीरको त्याग देता है। तो ऐसा शरीर जो एक क्षण तो सुखी होता है और दूसरे ही क्षण किसी कारणवश अपार दुःखका अनुभव करता है, ऐसे शरीरको आत्मा कैसे कहा जा सकता है?

मुझे लगता है कि मैं गुरुदेवकी बातोंको ठीक प्रकारसे समझ नहीं पाया हूँ। श्रीगुरुदेवके वचन सदा सर्वदा ही सत्य हैं। उन्होंने मुझे सत्य बात ही बतलायी

है परन्तु मेरे ही समझनेमें कमी रह गयी है। अतः मुझे उनके पास जाकर यह प्रश्न पुनः करना चाहिए, "आपके वचनका तात्पर्य क्या है?"

इन्द्र द्वारा ब्रह्माजीसे अपने संशयका निवेदन एवं पुनः बत्तीस वर्ष तक तपस्या

इन्द्र श्रीब्रह्माके पास पहुँचा और उनसे पूछा, "गुरुदेव, आपने जो बतलाया था कि जलमें जिसके प्रतिबिम्बका तुमने दर्शन किया, (अर्थात् यह शरीर) वही आत्मा है, यह नित्य है, कभी अप्रसन्न नहीं होती और जन्म-मृत्युसे परे है। किन्तु मैं देखता हूँ कि इस शरीरमें प्रतिक्षण, एकके पश्चात् एक, परिवर्तन होते हैं। मृत्युके उपरान्त यह शरीर या तो जलाकर भस्म कर दिया जाता है या फिर अन्य जीव-जन्तुओंका भोजन बनकर अन्ततः मलमें परिवर्तित हो जाता है। तो ऐसेमें किस प्रकार इस शरीरको ही आत्मा कहा जा सकता है?"

श्रीब्रह्माने उत्तर दिया, "मैं तुम्हारा यह प्रश्न सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मेरी शिक्षाका तात्पर्य यही था कि शरीरका प्रतिबिम्ब अथवा शरीर ही आत्मा नहीं है। तुम अपनी बुद्धिके दोषके कारण ही इसे समझ नहीं पाये, अतः अब तुम्हें और बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए यहाँ वास करना होगा। तब तुम मेरे उपदेशोंको समझने और धारण करनेमें सक्षम होओगे।"

इन्द्रने वैसा ही किया और बत्तीस वर्षोंके पश्चात् अर्थात् इस प्रकार कुल चौसंठ वर्षों तक ब्रह्मचर्य धारणकर गुरुदेवकी सेवा करनेके पश्चात् वह फिरसे श्रीब्रह्माके पास आया। श्रीब्रह्माने कहा, "जो व्यक्ति स्वप्न देखता है, स्वप्नमें दिखायी देनेवाली गतिविधियोंका अनुभव करता है, वही व्यक्ति आत्मा है। वही शोकसे रहित, अभय एवं अमृत-स्वरूप है, वही ब्रह्म है।"

आत्मतत्त्वके विषयमें पुनः ब्रह्माजीके उत्तरको सुनकर इन्द्र द्वारा विचार

यह बात सुनकर इन्द्र अपने राज्यमें लौट आया, किन्तु मनमें सन्देहके कारण पुनः श्रीब्रह्माके पास जाकर पूछने लगा, "ऐसा कैसे हो सकता है? यह तो असम्भव है। स्वप्नमें एक व्यक्ति अनेकों दृश्य देखता है, किन्तु जागृत अवस्थामें कभी तो वह उद्विग्न और परेशान रहता है, कभी स्त्री, पुत्र, परिवार आदि द्वारा कुछ सुख अनुभव करता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् फिर चिन्तित हो उठता है। वह सोचता है, 'यदि मेरे पास कुछ धन आ जाए तो मैं सुखी हो जाऊँगा।' धन आ जाता है, किन्तु व्यक्ति फिर भी सन्तुष्ट नहीं होता। वह सोचता है, 'यदि एक सुन्दर और गुणवती स्त्री मेरी पत्नी बन जाए तो मैं जीवन भर सुखी रहूँगा।' ऐसी पत्नी मिलनेपर भी वह सुखी नहीं होता, क्योंकि अभी सन्तान नहीं है। सन्तान प्राप्तिके पश्चात् भी वह कभी सुखी नहीं होता, क्योंकि वह सदा किसी शारीरिक व्याधि अथवा मानसिक चिन्ताओंसे घिरा रहता है। मनके द्वारा ही व्यक्ति यह सब विचार करता है। इन्द्रने यह भी विचार किया, "कोई व्यक्ति जागृत अवस्थामें नेत्रहीन होनेपर भी स्वप्नकी अवस्थामें सब कुछ दर्शन कर सकता है। अतएव स्वप्नमें जो छाया-दर्शन या प्रतिबिम्ब-दर्शन होता है, वह कदापि परम सत्य नहीं है। अतः स्वप्नमें विचरण करनेवाला काल्पनिक सुख-दुःखसे पीड़ित व्यक्ति आत्मा नहीं हो सकता।

"इतना ही नहीं, स्वप्न अपने आपमें एक मिथ्या है। जब व्यक्ति नींदसे उठता है और बाह्य चेतना प्राप्त करता है, तब वह सोचता है, 'अरे, मैं जो भी देख रहा था वो सब मिथ्या था।' यदि व्यक्तिके स्वप्नमें कोई उसका गला काट दे तो वह व्यक्ति अनुभव करता है, "मैं रो रहा हूँ, पर मर नहीं रहा हूँ! यह कितनी अद्भुत बात है।" कुछ समयके पश्चात् जब वह उठता है तो समझ पाता है, "अरे, मैं क्या व्यर्थका विलाप कर रहा था!" अतएव अवश्य ही यह व्यक्ति, जो स्वप्नकी घटनाओंसे व्यथित हो जाता है, आत्मा नहीं हो सकता।"

इन्द्रका असंतोषपूर्वक पुनः ब्रह्माजीके पास जाकर बत्तीस वर्ष तपस्या करना

पुनः इन्द्र श्रीब्रह्माके पास जाता है, और इस बार पुनः बत्तीस वर्ष तक उनकी सेवा करनेके पश्चात्

श्रीब्रह्मा इन्द्रको बतलाते हैं, “जब तुम गहरी नींदमें, बिना कोई स्वप्न देखे सो रहे होते हो, वही स्थिति ही वास्तविकता है। वही आत्माका अनुभव है। उस समय तुम किसी मायिक विचारका चिन्तन नहीं करते अतएव यही आत्माकी उपस्थिति है।” इन्द्र इस पर विचार करता है, “यह तो मायावादका विचार है। इसमें कोई स्पष्ट पारमार्थिक विचार नहीं है। यह तो निरर्थक है अथवा शून्यके समान है। सुषुप्तावस्था (गहरी नींदकी अवस्था) में आत्माका जो स्वरूप प्रकाशित होता है, वह आत्मा यह नहीं जान सकती कि जागृत अवस्थामें अथवा स्वप्नकी अवस्थामें उसका अस्तित्व क्या है, परन्तु आत्माका स्वरूप तो नित्य एवं अविनाशी है।”

ब्रह्माजीके उत्तरसे इन्द्रका पुनः असंतोष एवं अन्ततः यथार्थ आत्मतत्त्वके ज्ञानकी प्राप्ति

ऐसा विचार करके इन्द्रके मनमें इस मतको लेकर भी असन्तुष्टि हुई। वह वापस श्रीब्रह्माके पास गया। इस समय श्रीब्रह्माने इन्द्रको पाँच वर्ष तक सेवा करनेके लिए कहा तथा इस प्रकार इन्द्रको श्रीब्रह्माके पास जाकर उनकी सेवा करते हुए और तपस्या करते हुए एक-सौ-एक वर्ष हो चुके थे।

इस बार श्रीब्रह्माने उसे आत्माका सत्य बतलाया। उन्होंने कहा, “इस भौतिक शरीरके भीतर एक चिन्मय वस्तु है, जो कि भगवान्‌का अंश है। अब ठीक रूपसे अभ्यास करके तुम इस तत्त्वका अनुभव प्राप्त कर सकते हो। यद्यपि मैं पहलेसे ही तुम्हें यही तत्त्व सिखला रहा था, किन्तु तुम मेरी बातको पकड़ नहीं पा रहे थे और न ही अनुभव कर पा रहे थे। इसी कारण मैं तुम्हें क्रमशः धीरे धीरे इस स्तर पर लाया हूँ। अब एक-सौ-एक वर्ष तक गुरु-सेवा करनेसे तुम्हारा पारमार्थिक स्तर उन्नत हो गया है अर्थात् तुम्हारा हृदय शुद्ध हो गया है।”

*****

इन्द्र और विरोचन दोनों ही श्रीब्रह्माके शिष्य थे। दोनोंका ही यह विचार था कि, “मैं जगद्गुरु श्रीब्रह्माका शिष्य हूँ।” किन्तु वास्तविक शिष्य कौन है? वास्तविक शिष्य वही है जो गुरु द्वारा दी गई शिक्षाओंको जीवनमें पालन करता है, जो परम-सत्यको, अपने गुरुदेवके अन्तर्हृदयके भावोंको जानना चाहता है।

एक सद्गुरुके विभिन्न शिष्योंमें तारतम्य

श्रीनारद मुनि एक [सद्] गुरु हैं। उनके अनेक शिष्य हैं—व्यास, वाल्मीकि, ध्रुव, प्रह्लाद, प्राचीनबर्हि, वालखिल्य ऋषि और प्रजापतिके हजारों पुत्र जिनको श्रीनारदने दो बार ज्ञान प्रदान किया—ये सभी श्रीनारदके शिष्य हैं। किन्तु उन सबमें इतनी भिन्नता क्यों है?

[श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने भक्तोंसे प्रश्न करना प्रारम्भ किया—] क्या तुम्हें ध्रुव और प्रह्लादमें कोई अन्तर दिखायी देता है? क्या तुम बता सकते हो?

[भक्त]: ध्रुव महाराजने प्राप्त किया...

[श्रील गुरुदेव]: क्या वे श्रीनारदके शिष्य हैं?

[भक्त]: हाँ।

[श्रील गुरुदेव]: और प्रह्लाद भी श्रीनारदके शिष्य हैं?

[भक्त]: हाँ।

[श्रील गुरुदेव]: उन दोनोंमें अन्तर क्या है? क्या वे दोनों एक जैसे हैं? या उनमें कुछ भिन्नता है?

[भक्त]: कुछ अन्तर है।

[श्रील गुरुदेव]: क्या?

[भक्त]: ध्रुव महाराजको स्वयं तपस्या करनी पड़ी, और दूसरी ओर प्रह्लाद महाराजको माताके गर्भमें ही भागवतम्‌का दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया।

[श्रील गुरुदेव]: क्या आप कुछ अधिक बता सकते हैं?

[भक्त]: ध्रुव महाराजकी कुछ जागतिक अभिलाषाएँ थीं। उन्होंने कुछ जागतिक लाभके लिए आराधना की इसलिए उन्हें पहले उनका फल प्राप्त हुआ, किन्तु प्रह्लाद महाराजकी कोई जागतिक इच्छा नहीं थी।

[श्रील गुरुदेव]: फिर भी, ध्रुव महाराज यह सोच रहे थे, “मैं श्रीनारदका शिष्य हूँ।” किन्तु प्रह्लादने सभी भौतिक वस्तुओंको अस्वीकार कर दिया। प्रह्लादकी क्या अभिलाषा थी, उन्हें श्रीनारदसे किस वस्तुकी

प्राप्ति हुई—यह ज्ञान एवं अनुभव कि भगवान् सर्वत्र हैं, सब कुछ भगवान्‌में है। इसलिए वह महाभागवत थे एवं पूर्णतः सन्तुष्ट थे। वह अपने आराध्य भगवान्‌का दर्शन सभी वस्तुओंमें करते थे, यहाँ तक कि घासके एक तिनकेमें भी। उन्हें किसी बातका भय नहीं था; और वे सदैव आत्म-सन्तुष्ट थे।

किन्तु श्रीनारदके श्रीवेदव्यास जैसे शिष्य भी हुए, जिन्हें श्रीनारदने कुछ और वस्तु भी दी। वह क्या है? श्रीव्यासको जगत्‌की सभी वस्तुओंका ज्ञान है। उन्होंने दिव्य आलौकिक वस्तुओंका भी अनुभव प्राप्त किया है, और अपने ग्रन्थोंमें उसका विवरण दिया है। उन्होंने वेदोंको चार भागोंमें विभाजित किया और उन सबका सार वेदान्तमें प्रकाशित किया। फिर उन्होंने वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतम्‌में प्रकाशित किया। कम बुद्धिवाले लोगोंके लिए, जो सदा इन्द्रियतृप्तिमें लीन रहते हैं, श्रीव्यासदेवने महाभारतकी रचना की। महाभारत जनसामान्यके लिये बहुत रोचक ग्रन्थ है, क्योंकि इसमें क्षत्रियोंके आपसमें युद्ध और प्रपञ्चका सुविवरण है। श्रीव्यासदेव साधारण मनुष्य नहीं थे। वे अत्यन्त बुद्धिमान थे। वे जानते थे कि पाठकोंको पारमार्थिक राज्यमें क्रमशः कैसे प्रवेश कराना है। यद्यपि उन्होंने सब कुछ बहुत सूझबूझ और बुद्धिमतासे लिखा था, फिर भी वे सन्तुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने श्रीनारदसे कहा, "हे गुरुदेव, मैंने इतना कुछ लिखा है, फिर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। क्यों?"

श्रीनारदने उत्तर दिया, "मैं जानता हूँ, आप सन्तुष्ट नहीं हो सकते, क्योंकि आपने भगवान्‌की मधुर लीलाओंका गुणगान नहीं किया है। आपने अभी तक यह सुनिश्चित नहीं किया है कि परम भगवान् कौन हैं और उनका धाम कहाँ है, और आपने दिव्य भगवद्-प्रेम और स्नेहका भी विस्तृत वर्णन नहीं किया है। आपको भक्तियोग द्वारा इसका अनुभव कर, इसके विषयमें वर्णन करना चाहिए। तभी आप पूर्ण सन्तुष्ट हो सकते हैं।"

श्रीव्यासदेवने तब भक्तिका आश्रय लिया। उन्होंने स्वयं भगवान् और उनकी छायाके रूपमें मायाका दर्शन किया, और फिर उन्होंने श्रीमद्भागवतम्‌की रचना की। श्रीमद्भागवतम्‌में क्या समाहित है? सर्वोच्च दिव्य ज्ञान, प्रेम और स्नेह, तथा कृष्णका अतिसुन्दर स्वरूप जो प्रेममय है—*रसो वै सः*। श्रीमद्भागवतम्‌में श्रीव्यासदेवने गोपियोंकी महिमा गाते हुए कहा—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

श्रीमद्भा॰ (१०/४७/६३)

[श्रीनन्दमहाराजके व्रजमें रहनेवाली उन गोपियोंकी चरण-रेणुकी मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ, जिनके श्रीमुखसे निकली हुई हरिकथा त्रिभुवनको पवित्र करती है।]

यद्यपि श्रीनारदने प्रह्लादको दिव्य ज्ञान प्रदान किया, किन्तु क्या श्रीप्रह्लाद श्रीव्यासदेव या श्रीशुकदेव गोस्वामीके समान हो सकते हैं? कभी नहीं। ये अन्तर क्यों देखे जातें हैं? क्यों? हम देखते हैं कि श्रीनारदने प्राचीनबर्हिको भी ज्ञान दिया, किन्तु प्राचीनबर्हि इतने उन्नत नहीं थे।

हम देख सकते हैं कि श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादके अनेक शिष्य थे, और उनमें नौ या दस संन्यासी प्रमुख थे, जो बहुत उच्च कोटिके शिष्य थे। परन्तु उन समस्त शिष्योंमें सभी एक ही स्तरके नहीं थे। उदाहरणके लिए, रामचन्द्र पुरीने भी श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादसे ही दीक्षा ली थी, परन्तु वह मायावादी विचारोंसे दूषित हो गये। दूसरी ओर, उनके एक अन्य शिष्य, श्रीईश्वरपुरी, एक उन्नत कोटिके भक्त, सिद्ध महापुरुष थे। वे सदैव श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादकी भाँति श्रीकृष्ण विरहमें क्रन्दन करते रहते थे, और वे ही भविष्यमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके गुरु हुए। इतना ही नहीं, श्रीपरमानन्द पुरी और ब्रह्मानन्द भारती आदि जैसे श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादके अनेक अन्य शिष्य थे, परन्तु वे सभी अलग-अलग स्तरके भक्त थे। ऐसा क्यों?

इसी प्रकार, श्रील स्वामी महाराज, आपके प्रभुपाद, इस संसारमें आये। मुझे लगता है कि उनके कई लाख शिष्य हैं—प्रत्यक्ष शिष्य, अप्रत्यक्ष शिष्य, 'फोन' द्वारा दीक्षित शिष्य, पत्र द्वारा दीक्षित शिष्य और यहाँ तक कि कुछ ऐसे भी हैं जो वर्तमान समयमें उनके

कैसेट द्वारा दीक्षित हो रहे हैं और वे सभी कह रहे हैं, “मैं उनका शिष्य हूँ, उनका सर्वोत्तम शिष्य हूँ।”

यह मतभेद क्यों हैं? क्या आप समझा सकते हैं?

[भक्त]ः प्रत्येक व्यक्ति अनोखा है और उसकी अनेक भिन्न-भिन्न इच्छाएँ होती हैं। सबकी भिन्न-भिन्न इच्छाएँ होती हैं।

[श्रील गुरुदेव]ः अन्य उदाहरणसे समझो। सूर्य एक ही है। सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे वायु गर्म हो जाती है, जल भी बहुत गर्म हो जाता है, परन्तु लकड़ी कभी भी गर्म नहीं होती। ऐसा क्यों? कुछ इस प्रकारके पत्थर होते हैं, जो शीशेकी भाँति, सूर्यकी किरणें पड़नेपर इतने गर्म हो जाते हैं कि वे किसी अन्य वस्तुको जला तक सकते हैं। ऐसा क्यों? परन्तु लकड़ीमें ऐसा ताप नहीं देखा जाता। तो भिन्न-भिन्न वस्तुओंपर सूर्यकी किरणोंके भिन्न-भिन्न प्रभावके कारण क्या यह मानना होगा कि इसमें सूर्यकी किरणोंका कुछ दोष है अथवा उन किरणोंको धारण करनेवाली वस्तुओंका तारतम्य है?

[भक्त]ः सूर्य एक ही है।

[श्रील गुरुदेव]ः इसी प्रकार [सद्] गुरुदेव भी एक ही हैं, परन्तु उन्होंने अपने शिष्योंको इस प्रकार भिन्न-भिन्न शिक्षाएँ क्यों दी? और क्यों प्रत्येक शिष्य ऐसा कहता है कि वह ही श्रीनारदका, सूर्यका अथवा श्रीस्वामीजीका, श्रीकृष्णका वास्तविक शिष्य है? शिष्योंमें परस्पर यह भेद क्यों है? आप बतलानेका प्रयास करें। यह प्रश्न सभीके लिए है।

[भक्त]ः पूर्व जन्मके संस्कारके प्रभावसे, पूर्व कृत कर्मों अथवा साधुसङ्गके अनुसार ही व्यक्तिका हृदय कुछ परिमाणमें शुद्ध होता है। हृदयकी शुद्धताके अनुरूप ही शिष्य गुरुकी शिक्षाओंको ग्रहण कर सकता है, शुद्धताके अभावमें श्रीगुरुदेवकी परम उन्नत शिक्षाओंसे भी शिष्य अनधिकारवशतः अपना अनिष्ट कर सकता है। शिष्यको गुरुके उपदेशोंको ग्रहण करनेके लिए श्रीईश्वर पुरीपादकी भाँति शुद्ध होना होगा अन्यथा वह रामचन्द्र पुरीकी भाँति भक्ति मार्गसे च्युत भी हो सकता है।

असद् एवं सद् गुरु

[श्रील गुरुदेव]ः यदि दो शिष्योंके हृदय शुद्ध हैं, और वे एक ही गुरुके पास जाते हैं, तो क्या उन्हें एक ही वस्तु मिलेगी या नहीं?

[भक्त]ः क्या दोनोंका हृदय शुद्ध है?

[श्रील गुरुदेव]ः हाँ।

[अन्य भक्त]ः जैसे विजय कुमार और ब्रजनाथ।

[भक्त]ः यह तो उनकी आत्माके विशिष्ट आन्तरिक स्वरूप पर निर्भर करता है।

[श्रील गुरुदेव]ः हाँ! लेकिन गुरु चाहते हैं कि सभी शिष्य उनका अनुसरण करें, और गुरु चाहते हैं कि सभी शिष्य वैसे ही उन्नत बनें जैसे गुरु स्वयं हैं। मैं असद्-गुरुओंकी बात नहीं कर रहा हूँ। वे तुम्हें कुछ नहीं दे सकते, क्योंकि वे नकली हैं। वे केवल नकली वस्तुएँ ही दे सकते हैं, वे कभी वास्तविक वस्तु, शुद्धकृष्ण-भक्ति, कृष्ण-प्रेम नहीं दे सकते। सांसारिक दृष्टिकोणसे यदि किसीको ताप और प्रकाश चाहिए, तो उसे सूर्य द्वारा दी जा रही सुविधाको ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार, यदि किसीको उन्नत कोटिका तत्त्व-ज्ञान चाहिए, तो उसे एक सिद्ध महापुरुष (आत्मज्ञानी), एक वास्तविक, प्रामाणिक [सद्] गुरु द्वारा प्रदत्त सुविधाको ग्रहण करना चाहिए। कोई अपने मन-मनमें भावुक होकर यह विचार कर सकता है, “मेरे गुरु बहुत उच्च श्रेणीके हैं। इस विश्वमें मेरे गुरु जैसा कोई नहीं है।” लेकिन वह गुरु वास्तवमें नकली हो सकता है, जिसका दिव्य पारमार्थिक जगत्‌से कभी कोई सम्पर्क ही नहीं हुआ। ऐसे गुरुके विषयमें यदि कोई यह सोचता है कि, “मेरे गुरुदेव इस समय समस्त विश्वके गुरुओंमें सर्वोत्तम गुरु हैं। उनके जैसा विश्वमें कोई अन्य नहीं है।” क्या ऐसी सोचसे उस शिष्यको कुछ प्राप्त होगा? कुछ नहीं।

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं
दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना-
स्तेऽपीशतन्त्र्यामुरुदाम्नि बद्धाः॥

श्रीमद्भा॰ (७/५/३१)

इस श्लोकका अर्थ क्या है?

[भक्त]: इस श्लोकमें प्रह्लाद महाराज कह रहे हैं कि यदि कोई अन्धा व्यक्ति है, और अन्य अन्धे लोग उसकी शरण लेते हैं, तो जैसे-जैसे वे आगे बढ़ेंगे, रास्ता भटक जाएँगे और खाईमें गिर जाएँगे। यदि गुरुके पास कोई पारमार्थिक दिव्य ज्ञान नहीं है, और वह अनुभूति सम्पन्न नहीं है, तो उसे पारमार्थिक दृष्टिसे अन्धा माना जाता है, और जो लोग उसका अनुसरण करते हैं, वे सभी बहुत भारी विपत्तिमें पड़ जाते हैं। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि ऐसा परमार्थिक अन्धा गुरु और उसका शिष्य, दोनों नारकीय स्थितिकी ओर बढ़ते हैं और दीर्घ समय तक वहीं रहेंगे।

[श्रील गुरुदेव]: तो, आरम्भमें एक व्यक्ति पारमार्थिक दृष्टिसे अन्धा था। वह एक अन्य अन्धे व्यक्तिके सम्पर्कमें आया और उसने ऐसे कल्पना की, "इस व्यक्तिके पास आँखें हैं और यह मेरी मदद कर सकता है।" कुछ समय पश्चात्, किसी प्रकार उसे ज्ञात हुआ, "जिन्हें मैं गुरु मान रहा हूँ, वे भी मेरे समान अन्धे हैं", तब उसे क्या करना चाहिए? उस साधकको ऐसे अयोग्य गुरुको अस्वीकार कर देना चाहिए और किसी ऐसे व्यक्तिके पास जाना चाहिए जिसके पास वास्तवमें अति दिव्य और पारमार्थिक नेत्र हैं।

सद्गुरुकी प्राप्तिका उपाय

परन्तु वह साधक ऐसे सद्-गुरुको कैसे पहचानेगा? किसी ऐसे शुद्धभक्तके पास जाकर उससे हरिकथा सुननेसे ही पहचान पायेगा।[१] परन्तु यदि वह साधक व्यक्ति सदा सांसारिक कार्यों में ही व्यस्त रहता है

१ इस कथनको स्पष्ट करनेके लिए हमारे गुरुवर्गोंके विचार नीचे संलग्न हैं:-

श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज—"यदि किसी भाग्यवान जीवात्माके हृदयमें एक सद्-गुरुके चरणोंका आश्रय प्राप्त करनेकी निष्कपट इच्छा (तीव्र उत्कण्ठा) एवं आर्त्तियुक्त प्रार्थना होती है तब श्रीकृष्णकी कृपासे उसे अवश्य ही एक सद्-गुरुकी प्राप्ति होती है। एक बद्धजीव अत्यन्त नगण्य है, उसके लिए सद्-गुरुकी महिमाकी अनुभूति करना असम्भव है। तथापि पूर्व अनेक जन्मोंमें सञ्चित भक्ति-उन्मुखी सुकृतियोंके फलस्वरूप, किसी जन्ममें उसे श्रीकृष्णकी कृपासे उनके एक शुद्धभक्तका साक्षात्कार होता है। वे कृष्ण-भक्त (श्रीगुरुदेव) कृपापूर्वक उस जीवको कृष्ण-कथा श्रवण कराते हैं, और क्रमशः वह जीव अपने हृदयमें भक्तिके प्रादुर्भावका अनुभव करता है। **साधुकी कृपासे ही जीव साधुके वास्तविक नित्य स्वरूपको जान-समझ सकता है, अन्यथा नहीं**। महाभागवत वैष्णवगण श्रीगौर-कृष्णके अत्यन्त प्रिय नित्य पार्षद हैं, असीमित राशिमें भक्ति-उन्मुखी सुकृतियोंको सञ्चित किये बिना एक बद्ध जीवका ऐसे वैष्णवोंका दर्शन एवं आश्रय प्राप्त करने का सौभाग्य उदित नहीं होता।" (श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन व मिशन द्वारा प्रकाशित 'श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके उपदेशामृत' से अनुदित)

श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके वचन— निरपेक्षतापूर्वक विचार करनेसे हम इस विश्वास पर पहुँच सकते हैं कि एक सद्-गुरुकी हमें आवश्यकता है। जब हमारा यह विश्वास वास्तविक रूपमें सुदृढ़ होता है, तब श्रीकृष्ण सद्-गुरुको ढूँढनेमें हमारी दो प्रकारसे सहायता करते हैं। पहला, प्रामाणिक शास्त्रोंके द्वारा कृष्ण हमें एक सद्-गुरुके चरित्र एवं क्रियाओंकी (गुणों एवं लक्षणोंकी) शिक्षा देते हैं। दूसरा, कृष्ण स्वयं ही एक सद्-गुरुको हमारे पास भेज देते हैं, जब हम उन सद्-गुरुकी शिक्षाओंको ग्रहण करनेके कुछ योग्य होते हैं। अतएव, जब हमें एक सद्-गुरुकी वास्तवमें आवश्यकता अनुभव हो, तब शास्त्रोंका सामान्य अर्थ ही ऐसे सद्-गुरुको ढूँढनेमें हमारा एकमात्र मार्गदर्शक होना चाहिए। (श्रीसज्जनतोषणी, २६.७ में प्रकाशित प्रबन्ध 'Initiation into Spiritual Life' से अनुदित)

यदि हम सौभाग्यवान हैं और निष्कपटतासे एक सद्-गुरुकी खोज करते हैं तथा ऐसे सद्-गुरुकी कृपा-प्राप्तिके लिए दीनतापूर्वक भगवान्से प्रार्थना करते हैं, तब भगवान्की कृपासे हमें निश्चित ही इसी जन्ममें एक सद्-गुरु मिल जाएँगे। (श्रीश्रीमद्भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज द्वारा सङ्कलित 'श्रीप्रभुपादेर उपदेशामृत' से अनुदित)

यदि मेरी प्रार्थना निष्कपट है, तब मैं सर्वज्ञ भगवान्की कृपासे सब कुछ समझ सकता हूँ। **विद्या अर्जन करनेका इच्छुक एक व्यक्ति विद्वानकी सहायता, उसकी कृपासे ही विद्वानको पहचान सकता है।** हमारे हृदयमें विराजमान भगवान् ही हमारी सहायता करेंगे, मुझे केवल उनपर निर्भर करना है। (श्रीश्रीमद्भक्तिमयूख भागवत गोस्वामी महाराज द्वारा सङ्कलित 'श्रीप्रभुपादेर उपदेशामृत' से अनुदित)

और उसके पास साधु-सङ्ग करनेके लिए समय ही नहीं है, तो वह सद्-गुरुको कैसे जान सकता है? यदि उसके पास सुननेका समय नहीं है, तो उसे जन्म और मृत्युके अन्तहीन चक्रमें ही बद्ध रहना होगा। दूसरी ओर, ऐसा व्यक्ति जिसके पास पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए समय है, वह सोचेगा, "मैं इन भौतिक कार्योंमें ही अपना अधिकांश समय क्यों नष्ट कर रहा हूँ?"

एक व्यक्ति जिसे दूधकी आवश्यकता है, वह एक ऐसी गाय खरीद सकता है जो दूध देती है। किसी व्यक्तिने एक गाय खरीदी, लेकिन घरमें लानेके पश्चात् उसने देखा कि वह गाय दूध नहीं देती है। वह सोचने लगा कि एक दिन यह गाय एक बछड़ेको जन्म देगी और तब दूध मिलेगा, लेकिन बछड़ेका कभी जन्म ही नहीं हुआ। उसने एक वर्ष, फिर दो वर्ष तक प्रतीक्षा की, परन्तु गायका बछड़ा अथवा बछड़ी कुछ भी नहीं हुआ, इसी कारण उसने कभी दूध नहीं दिया। उस व्यक्तिको दूध प्राप्त करनेकी बहुत अभिलाषा थी। तो उसे क्या करना चाहिए?

[भक्त]ः उसको उस गायसे दूध प्राप्तिकी आशाका परित्यागकर अन्य एक नयी गाय खरीदनी चाहिए।

[श्रील गुरुदेव]ः हाँ, उसे क्यों नहीं एक नयी गाय लानी चाहिए, जिसका एक बछड़ा भी हो? अर्थात् अवश्य लानी चाहिए। अतः आपको एक ऐसा गुरु स्वीकार करना चाहिए जिनके पास दिव्य ज्ञान हो, जो सभी संशयोंका समाधान कर सकें, जो श्रीनारद, श्रीरूप-सनातनके समान हमें ज्ञान प्रदान कर सकें। एक ऐसा गुरु जो श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर और मेरे गुरुदेव, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके समान हो। मुझे देखो, मैं संसाररूपी मलमें पतित एक कीड़ेके समान था, परन्तु मेरे गुरुदेवने मुझपर कृपाकर मुझे अपने सङ्गके द्वारा भक्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया और अब सारा विश्व मेरी कथाको सुन रहा है। उन्होंने यह कैसा चमत्कार कर दिया!

सतोवृत्ति—साधुवृत्तिका अर्थ

अतएव हम सभीको भक्तिमार्गके विशुद्ध विचारोंको जानना चाहिए तथा उसीके अनुरूप चलनेका प्रयास करना चाहिए।

श्रील रूप गोस्वामीके द्वारा रचित उपदेशामृतके श्लोक (३) "*उत्साहात्-निश्चयात्-धैर्यात्-तत्-तत्-कर्मप्रवर्तनात्। सङ्ग-त्यागात्-सतो वृत्तेः षड्भि-र्भक्तिः प्रसिध्यति॥*" में प्रयुक्त 'सतो-वृत्ति' शब्दका क्या अर्थ है?

[भक्त]ः इस श्लोककी टीकाके अनुसार एक व्यक्तिको पूर्व आचार्योंके पदचिह्नों अर्थात् उनके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलना चाहिए। गृहस्थोंके लिए इसका अर्थ है ईमानदारी (सत्यनिष्ठा) से जीवन यापन करना, लेकिन साथ ही उन्हें यथासम्भव अपना अधिकाधिक समय भजन-क्रियाओंमें व्यतीत करना चाहिए और अपनी आवश्यकतासे अधिक अर्थ उपार्जन करनेमें समयको नष्ट नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंके लिए इसका अर्थ है कि उन्हें श्रवण और कीर्तन द्वारा महान-महान पूर्व आचार्योंके पदचिह्नोंका दृढ़तासे पालन करना चाहिए।

[श्रील गुरुदेव]ः [अन्य एक भक्तसे] क्या आप इसे और स्पष्ट कर सकते हैं? आप सभीको यह जाननेका प्रयास करना चाहिए, यह उन लोगोंके लिए है जो शिष्य हैं और जो दिव्य पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

[भक्त]ः श्रील रूप गोस्वामीके द्वारा लिखित इस श्लोकमें भक्तिके अनुकूल छह प्रकारकी क्रियाओंके विषयमें लिखा है। इन छहमें-से अन्तिम है—सतोवृत्ति। इसका अर्थ क्या है? वृत्तिका अर्थ है आचरण अथवा व्यवहार। सतोवृत्ति अर्थात् साधु-पुरुषोंका श्रेष्ठ आचरण अथवा भक्ति-सदाचार। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस श्लोककी टीकामें वर्णन किया है—"सद्-वृत्ति अर्थात् साधुजनोंने जिस सदाचारका आचरण किया है एवं जिस वृत्तिका अवलम्बनकर जीवन-निर्वाह किया है, उसका आचरण करना चाहिए। गृहत्यागी भक्त भिक्षा या माधुकरी द्वारा एवं गृहस्थ भक्त वर्णाश्रम-धर्मकी

अनुकूल वृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करेंगे, यही सद्-वृत्ति है।" जिसके द्वारा इस संसारमें व्यक्ति अपना अस्तित्व बनाये रखता है, उसे वृत्ति कहते हैं। कैसी वृत्ति? सतो-वृत्ति। जिस प्रकार शुद्धभक्त इस संसारमें अपना जीवन व्यतीत करते हैं, हमें भी वही मार्ग स्वीकार करना चाहिए।

दूसरे शब्दोंमें, गृहस्थ भक्तोंके लिए यह शिक्षा है कि जिस प्रकार श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रीवास पण्डित और अन्य गृहस्थ भक्तोंने अपना जीवन व्यतीत किया, गृहस्थ भक्तोंको उनका अनुसरण करना चाहिए, सरल जीवन यापन करना चाहिए, भजनको सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए और कृष्णपर निर्भर रहना चाहिए। जो लोग संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी हैं, उन्हें श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीरूप, श्रीसनातन और अन्य त्यागी वैष्णवोंका अनुसरण करना चाहिए। ये परम उन्नत वैष्णवगण केवल भजन किया करते थे, और भगवान्‌की कृपासे जो कुछ भी उन्हें प्राप्त होता, वे उसे ही श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते थे। कभी-कभी वे माधुकरी करते थे। इस प्रकार, जो व्यक्ति पारमार्थिक जीवनमें प्रगति करना चाहता है, उसे अपने आश्रमके अनुरूप, प्राचीन महान भक्तों द्वारा प्रदर्शित आदर्शोंका अनुशीलन करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। ऐसा करनेसे उसका पारमार्थिक जीवन सफल होगा और इसकी उपेक्षा करनेसे उसकी भक्ति नष्ट हो जाएगी।

[श्रील गुरुदेव]: जब मेरे गुरु महाराज नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज प्रकटरूपमें अवस्थित थे, तब मठवासी सभी ब्रह्मचारी और संन्यासी भक्त घर-घर जाकर भिक्षा करते थे और यदि हम भिक्षामें चार रुपये एकत्रित कर पाते तो हम सोचते थे, "अति उत्तम! आज हमने बहुत अधिक भिक्षा संग्रह कर ली।" जब उसे लाकर हम गुरुदेवको देते थे तो वे बहुत ही सन्तुष्ट होकर कहते थे, "आज किसीने भी आपके समान सेवा नहीं की।" गुरुदेव सभीको ऐसा ही कहते थे।

एक दिन श्रीसनातन प्रभु, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके शिष्य...

[भक्त]: ये वह भक्त हैं जिन्होंने श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके साथ एक ही दिन संन्यास ग्रहण किया था।

[श्रील गुरुदेव]: उस समय श्रीसनातन प्रभुने अपना घर छोड़ दिया था और एक वानप्रस्थीकी भाँति मठमें निवास कर रहे थे। उन्होंने गुरु महाराजसे कहा, "मैं आपकी सहायता करना चाहता हूँ।" गुरु महाराजने पूछा, "कैसे?" श्रीसनातन प्रभुने उत्तर दिया, "मैं एक कार्यशाला बनाना चाहता हूँ, जहाँ प्रत्येक ब्रह्मचारीको अपना मात्र एक घण्टेका समय प्रतिदिन देना होगा। मैं ब्रह्मचारियोंको कपड़े बनानेकी शिक्षा दूँगा। अपने व्यवहारके लिए वे वहाँ चादर, कुर्तेके लिए वस्त्र और धोती आदि बना सकेंगे, और यदि कुछ अधिक बन पाया, तो हम उसे बाजारमें भी बेच सकते हैं, इस प्रकार भिक्षा माँगनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। आजकल किसीको भी भिक्षावृत्ति रुचिकर नहीं है। इसलिए हम साबुन या धूप-अगरबत्ती आदि बनानेका कारख़ाना भी लगा सकते हैं।

गुरु महाराजने इसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया और कहा, "आप सभी ब्रह्मचारी और संन्यासी हैं, त्यागी आश्रममें हैं। आप सभीको सदैव श्रीरूप-सनातन और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीका अनुसरण करना चाहिए।

"क्या कोई ब्रह्मचारी, जिसने गेरुएँ वस्त्र धारण कर लिए हैं, कुछ धन अर्जन करनेके लिए कहीं भी, किसी सांसारिक कंपनीमें, या सरकारके यहाँ, सेवाकार्यमें नियुक्त हो सकता है?"

[भक्त]: नहीं।

[श्रील गुरुदेव]: क्या उन्हें इसके लिए अनुमति दी जा सकती है या नहीं?

[भक्त]: नहीं।

[अन्य भक्त]: केवल विशेष परिस्थितियोंमें।

[श्रील गुरुदेव]: (उच्च स्वरमें) कभी नहीं! अन्यथा, उन्हें अपना गेरुआँ वस्त्र त्याग देना चाहिए।

[भक्त]: लेकिन कभी-कभी हम देखते हैं कि जो लोग गेरुएँ वस्त्र पहनते हैं, उन्हें कुछ समयके लिए बाहर नौकरी करनेकी अनुमति दी जाती है।

[श्रील गुरुदेव]: इसकी अनुमति किसने दी? क्या हमारे गुरुदेवने इसकी अनुमति दी है? यदि वह गेरुएँ वस्त्रोंमें है तो मैं इसकी अनुमति नहीं दे सकता। कोई [सद्] गुरु इसकी अनुमति नहीं देगा। ब्रह्मचारीको केवल कृष्णकी सेवा करनेकी अनुमति है। यदि उसने गेरुएँ वस्त्र धारण कर लिये हैं, तो वह अपने पिता या माताकी सेवा भी नहीं कर सकता, क्योंकि गुरुदेव उसके वास्तविक पिता हैं। पूर्वाश्रमके माता-पिता हमें मुक्ति नहीं दिला सकते, वे हमारी पारमार्थिक सहायता नहीं कर सकते। एक ब्रह्मचारीको श्रीनारद और श्रीशुकदेव गोस्वामीके आदर्शोंका अनुसरण करना चाहिए। जैसे ही श्रीशुकदेव गोस्वामी गर्भसे बाहर आये, वे बहुत तीव्रगतिसे वनकी ओर भागे।

पूर्ण एवं अपूर्ण शिष्य

यदि आप वास्तवमें अपनी कृष्ण-भावनामृतको विकसित करना चाहते हैं, तो आपको अपनी वृत्ति, अपनी भक्ति और अपनी समस्त चेष्टाओं द्वारा हमारे गुरुवर्गका दृढ़तासे शत-प्रतिशत अनुगमन करना चाहिए। यदि आप केवल पचास प्रतिशत ही पालन कर रहे हैं, तो परिणाम क्या होगा? परिणाम उसीके अनुरूप होगा। किन्तु गुरुदेव वास्तवमें पूर्ण सन्तुष्ट तभी होते हैं जब आप उनका शत-प्रतिशत अनुगमन करते हैं। इसलिए हमें शत प्रतिशत प्रयास करना चाहिए। अन्यथा, आप कल्पना मात्र करेंगे कि, "मैं श्रीनारदका शिष्य हूँ", या "मैं स्वामी प्रभुपादका शिष्य हूँ", लेकिन वास्तवमें आप अभी पूर्ण शिष्य नहीं हैं। तब आपको इस संसारमें प्राप्त ही क्या होगा? इससे आप जन्म और मृत्युके चक्रमें ही बद्ध रह जाओगे। '*चर्वित चर्वनानाम्*', अर्थात् आप अपने भौतिक जीवनमें 'पहलेसे ही चबाए हुएको चबानेमें' ही व्यस्त रह जाओगे।

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको सदा प्रह्लाद-चरित पढ़ना रुचिकर था। हमें श्रीप्रह्लादकी शिक्षाओंपर गहरायीसे विचार करना चाहिए, तभी हमें दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। मान लो किसी व्यक्तिने पहले विवाह किया और उसके बच्चे भी हैं। किन्तु अब उसने पत्नी और बच्चोंको छोड़कर बाहरसे तो त्यागी आश्रमको स्वीकार कर लिया, किन्तु उनके प्रति उसकी आसक्ति अभी भी बनी हुई है, वह उन्हें अब पहलेसे भी अधिक स्मरण करता है। त्यागसे पहले और त्यागके पश्चात्, यदि कुछ भी अन्तर नहीं आया तो फिर उन्हें त्यागनेका क्या लाभ हुआ? (अर्थात् बाह्यरूपसे गृहत्याग करने पर गृह अथवा स्वजनोंके प्रति ममत्व बुद्धि विद्यमान रहनेसे त्यागका वास्तविक उद्देश्य, कृष्णभक्ति, सिद्ध नहीं होगी।)

आपको अनुभव होना चाहिए, "कृष्ण मेरे सब कुछ हैं। गुरुदेवने मुझे यह दिव्य ज्ञान और सम्बन्ध [ज्ञान] प्रदान किया है। मुझे इसका अनुशीलन करना चाहिए। मुझे स्वयंको कृष्णभक्तिकी क्रियाओंमें संलग्न करनेका प्रयास करना चाहिए और कृष्णसे अपने इस दिव्य सम्बन्धको और उनके प्रति अपनी आसक्तिको बढ़ाना चाहिए।" यदि कोई शिष्य ऐसा नहीं कर रहा है, तो वह सोचेगा, 'मैं एक शिष्य हूँ। मैं अच्छा कर रहा हूँ। मैंने गेरुएँ वस्त्र धारण किए हुए हैं। मैं एक संन्यासी हूँ, आदि', लेकिन ये शब्द किसी कामके नहीं होंगे।

[श्रील गुरुदेव]: आप मुझसे अप्रसन्न मत होइएगा। मेरी भावना ऐसी कोई बात कहनेकी नहीं है जिससे आपमें-से किसीके भी हृदयको ठेस पहुँचे। मैं चाहता हूँ कि आप सभीको अनुभव हो कि वास्तविकता क्या है [पूर्ण अर्थात् वास्तविक शिष्य कैसा होता है]।

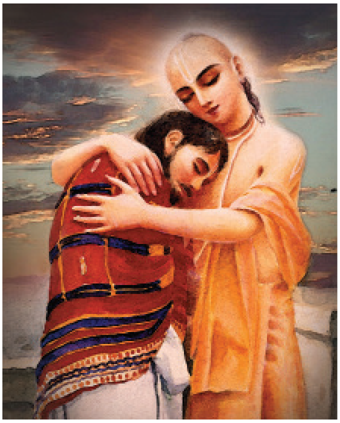

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष-१९, संख्या—५-८ से आगे)

श्रीमन्महाप्रभुका उत्कट-विरह तथा स्वरूप दामोदर एवं रायरामानन्दका उनको सान्त्वना प्रदान करना

श्रीमन्महाप्रभु नीलाचलमें नाना प्रकारकी लीलाओंके द्वारा अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करते थे। यद्यपि उनके हृदयमें कृष्ण-विरहकी प्रचण्ड ज्वाला भड़कती रहती थी, तथापि वे उसे बाहरमें प्रकट नहीं होने देते थे, क्योंकि यदि भक्तोंको प्रभुके विरहका ज्ञान हो जाता, तो वे भी दुःखी हो जाते। जब कभी प्रभुका उत्कट-विरह बाहरमें प्रकाशित हो जाता था, तो उस समयकी प्रभुकी व्याकुलताका वर्णन करना ही सम्भव नहीं है। उस व्याकुलताकी अवस्थामें रामानन्दरायजी प्रभुको कृष्ण-कथाएँ सुनाते तथा स्वरूपदामोदरजी कृष्णलीला-सम्बन्धित पदावलियाँ सुनाते थे, जिससे प्रभुके हृदयकी विरह-वेदना कुछ समयके लिए शान्त हो जाती तथा उनके प्राणोंकी रक्षा हो जाती। दिनके समय तो प्रभु सभी लोगोंसे मिलते थे, जिससे उनका भाव शान्त रहता था, किन्तु रात्रिकालमें निर्जनमें प्रभुकी विरह-वेदना भड़क उठती थी। श्रीमन्महाप्रभुको सुख देनेके लिए दोनों प्रभुके साथ ही रहते थे तथा श्लोकों तथा पदावलियोंके द्वारा प्रभुको उसी प्रकारसे सान्त्वना प्रदान करते थे, जिस प्रकार व्रजलीलामें सुबलसखा लीलाओंमें कृष्णकी सहायताकर उन्हें सुख पहुँचाते थे तथा ललिता सखी राधाजीकी प्रधान सहायिका होकर उन्हें सुख पहुँचाती थी। अतः दोनोंके सौभाग्यका वर्णन करना ही असम्भव है। वे दोनों सर्वत्र ही महाप्रभुके अन्तरङ्गके रूपमें परिचित थे।

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ लीला-विलासमें डूबे हुए थे। उसी समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी गृहत्यागकर महाप्रभुके पास पहुँचे।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीका गृहत्याग

पूर्वमें जब शान्तिपुरमें श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीने महाप्रभुका दर्शन पाकर उनके साथ ही पुरी जानेकी अनुमति माँगी, तो प्रभुने उन्हें उपदेश दिया था कि अभी तुम्हारे गृहत्यागका उचित समय नहीं आया है, अतः तुम अभी अपने घर लौट जाओ। घर जाकर बाह्यरूपसे समस्त प्रकारके व्यवहारिक कार्य करना, परन्तु हृदयमें सर्वदा ही मेरा स्मरण करते रहना। इस प्रकार अतिशीघ्र ही कृष्ण तुमपर कृपा करेंगे तथा तुम्हारा संसार-बन्धन नष्ट हो जायेगा।

महाप्रभुका उपदेश पाकर वे अपने घर लौट आये तथा मर्कट-वैराग्य छोड़कर विषयी-प्रायःकी भाँति रहने लगे, अर्थात् बाह्यरूपसे सामान्य व्यक्तिकी ही भाँति सारे सांसारिक कार्य करने लगे तथा सबसे यथायोग्य व्यवहार भी करने लगे, परन्तु उनका हृदय सर्वदा ही महाप्रभुके विरहमें तड़पता रहता था। उनकी इस प्रकार सांसारिक कार्योंमें रुचि देखकर उनके माता-पिता अति आनन्दित हुए। अब उन्हें विश्वास हो चला था कि रघुनाथ अब घर छोड़कर नहीं जायेगा।

उधर महाप्रभु मथुरा-वृन्दावनसे वापस जगन्नाथपुरी लौट आये थे। जब यह समाचार रघुनाथके पास

पहुँचा, तो उनका विरह चरम–अवस्थामें पहुँच गया तथा वे महाप्रभुसे मिलनेका उपाय सोचने लगे।

उस समय एक ऐसा म्लेच्छ अधिकारी था जिसे सप्तग्रामसे कर एकत्रित करनेका अधिकार प्राप्त था। किसी प्रकारसे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके पिता हिरण्य मजुमदारने उससे वह अधिकार छीन लिया था, जिससे वह हिरण्य मजुमदारका परम शत्रु बन गया तथा उनके दोष खोजने लगा। हिरण्य मजुमदार प्रतिवर्ष बीस लाख स्वर्णमुद्रा एकत्रित करते थे, परन्तु बारह लाख मुद्रा ही राजाको प्रदान करते थे, जबकि नियमानुसार चतुर्थांश अर्थात् पाँच लाख अपने पास रखकर शेषराशि पन्द्रह लाख मुद्राएँ जमा करानी होती थीं। यह बात उस मुसलमान अधिकारीको पता थी, इसलिए उसने हिरण्य मजुमदारसे बदला लेनेके लिए राजासे उनकी शिकायत कर दी। यह सुनकर कुपित होकर राजाने अपना वजीर हिरण्य मजुमदारके घर भेज दिया। उसके आनेसे पहले ही हिरण्य मजुमदार घरसे भाग गये। घरपर हिरण्य मजुमदारको न पाकर उस वजीरके सैनिकोंने रघुनाथको पकड़कर बन्धक बना लिया। वह मुस्लिम अधिकारी, वजीरके प्रतिनिधिके रूपमें प्रतिदिन रघुनाथको डरा–धमकाकर उनके पिता गोवर्धन मजुमदार तथा ताऊ हिरण्य मजुमदारके विषयमें पूछता था तथा कहता था कि अतिशीघ्र अपने पिता तथा ताऊको बुलाकर ले आओ नहीं तो तुझे भयङ्कर यातनाएँ सहनी होंगी। जब वह क्रुद्ध होकर रघुनाथको मारनेके लिए आता था, उनको देखते ही उस अधिकारीका मन बदल जाता था, उसका क्रोध शान्त हो जाता था तथा उसके हृदयमें उनके प्रति स्नेह उमड़ आता था। परन्तु उसके लिए वजीरकी आज्ञा पालन करना भी आवश्यक था। इसलिए वह मुस्लिम अधिकारी बाह्यरूपसे बालक रघुनाथको भय दिखाता था, जिससे कि वे अपने पिताके विषयमें उसे बता दें।

तब रघुनाथने एक उपाय सोचा। उन्होंने उस अधिकारीसे विनती करते हुए कहा कि—"मेरे पिता तथा ताऊ आपके दो भाई हैं। आप भाइयोंमें सर्वदा ही कलह होता रहता है। कभी तो आप आपसमें लड़ पड़ते हो तथा कभी आपसमें मिल जाते हो। आज आप लोग एक–दूसरेके विरोधी हो गये हो, कल फिरसे एक–दूसरेसे मिल जाओगे। मैं जैसे अपने पिताका पुत्र हूँ, वैसे ही आपका भी बालक हूँ। इस प्रकार आप मेरे पालक हैं, मैं आपका पाल्य हूँ। अतः पालक होकर पाल्यको इस प्रकारसे प्रताड़ित करना क्या उचित है?"

रघुनाथ दास गोस्वामीकी ऐसी मार्मिक युक्तियोंको सुनकर उस मुसलमानका हृदय द्रवित हो गया। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, जिससे उसकी दाढ़ी भीग गयी। वह बोला—"रघुनाथ! आजसे तुम मेरे पुत्र हो। मैं आज ही तुम्हें मुक्त करवाता हूँ।" ऐसा कहकर उसने वजीरसे रघुनाथ दास गोस्वामीको मुक्त करवा दिया तथा प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगा—"तुम्हारे ताऊ मूर्ख हैं, जो आठ लाख मुद्राएँ अकेले ही हड़प लेते हैं। मैं भी उसमें सहभागी हूँ, कुछ मुझे भी मिलना चाहिए। अतः तुम जाओ जाकर अपने ताऊको मुझसे मिलवाओ। अब मैंने उनपर छोड़ दिया है, जो उन्हें अच्छा लगे, वैसा ही करें।"

तब रघुनाथ दास गोस्वामीने अपने ताऊको उससे मिलवाया तथा सबकुछ शान्त हो गया। ऐसे ही रघुनाथ दास गोस्वामीका एक वर्ष व्यतीत हो गया। परन्तु अब उनके लिए महाप्रभुका विरह सहन करना अति कठिन हो गया था, अतः दूसरे वर्ष उनकी घरसे भागनेकी इच्छा हो गयी। इसलिए वे रात्रिमें अकेले ही नीलाचलकी ओर भाग खड़े हुए। परन्तु उनके पिताके द्वारा भेजे हुए लोगोंने उन्हें मार्गमें पकड़ लिया तथा वापस घर ले आये। इस प्रकार वे बार–बार भागनेका प्रयास करते, परन्तु मार्गमें ही पकड़ लिये जाते। इससे उनकी माताजी बहुत चिन्तित होकर उनके पिताजीसे बोली—"हमारा पुत्र पागल हो गया है। अतः इसे बाँधकर रखना चाहिए।" यह सुनकर उनके पिता हताश होकर कहने लगे—"देखो! इन्द्रके समान ऐश्वर्य तथा अप्सराके समान स्त्री जिसके मनको बाँध नहीं सकी, उसे सामान्य रस्सियोंसे बाँधकर कैसे रख पाओगी? जन्मदाता पिता अपनी सन्तानके प्रारब्धका नाश नहीं कर सकता। इसपर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा हो गयी है, अतः इस महाप्रभुके पागलको कौन बाँधकर रख सकता है?" इस प्रकार

दोनों पति–पत्नी पुत्र–वियोगकी आंशकासे व्याकुल हो गये।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका श्रीनित्यानन्दप्रभुसे मिलन एवं दण्ड–महोत्सव

उन्हीं दिनों सप्तग्रामके निकट ही पाणिहाटी नामक गाँवमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका आगमन हुआ। उनके आगमनका समाचार जब रघुनाथ दास गोस्वामीको प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपने पितासे कहा—"मेरी श्रीनित्यानन्दप्रभुके दर्शनोंकी बहुत इच्छा हो रही है, इसलिए कृपाकर मुझे वहाँ जानेकी अनुमति प्रदान कीजिए, अन्यथा मैं प्राण धारण नहीं कर पाऊँगा।"

यह सुनकर उनके पिताके मनमें भय बैठ गया। इसलिए उन्होंने कुछ सेवकोंके साथ पुत्रको जानेकी अनुमति प्रदान कर दी।

इस प्रकार जब रघुनाथ दास गोस्वामी पाणिहाटी पहुँचे तो उन्होंने दूरसे देखा कि गङ्गाके सुरम्य तटपर स्थित एक विशाल वटवृक्षके नीचे चबूतरेपर एक दिव्य आसनपर श्रीनित्यानन्द प्रभु करोड़ों सूर्योंके तेजको भी फीका करते हुए विराजमान थे। चबूतरे पर तथा उसके नीचे गङ्गाके तटपर लाखों भक्त विराजमान थे। उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभुकी शोभा असंख्य तारकाओंसे घिरे हुए चन्द्रके समान हो रही थी। श्रीनित्यानन्दप्रभुके ऐसे दिव्य प्रभावको देखकर रघुनाथ हतप्रभ रह गये। उन्होंने वहींसे श्रीनित्यानन्द प्रभुको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीको देखते ही श्रीनित्यानन्द प्रभुका सेवक बोला—"प्रभो! रघुनाथ आपको प्रणाम कर रहा है।" सुनते ही श्रीनित्यानन्दप्रभु बोले—"अरे चोर! तू आज दिखायी दिया है। आ, आज मैं तुझे दण्ड प्रदान करता हूँ।" प्रभु उन्हें बुला रहे थे, परन्तु वे सङ्कोचवश उनके निकट नहीं जा पा रहे थे। तब श्रीनित्यानन्दप्रभुने अपने सेवकोंके द्वारा उन्हें अपने निकट बुलवाया तथा उनके सिरपर अपने चरणकमल रख दिये। परम कौतुकी दयामय श्रीनित्यानन्दप्रभु उनसे करुणापूर्वक कहने लगे—"अरे चोर! तू मेरे पास नहीं आता है, दूर–दूर भागता है। अन्ततः आज तू पकड़में आ ही गया है। अतः अब मैं तुझे दण्ड प्रदान करता हूँ, और तुम्हारा दण्ड यह है कि तुम मेरे भक्तोंको दही–चिड़वा खिलाओगे।"

यह सुनते ही रघुनाथका हृदय आनन्दसे नाचने लगा। उनकी अवस्था ऐसी हो गयी मानो अन्धेको दो आँखें मिल गयी हों। उन्होंने अपने साथ आये सेवकोंको बाजारमें चिड़वा, शक्कर, दही, दूध, सन्देश (एक मिठाई), केले आदि लानेके लिए भेज दिया। देखते ही देखते वहाँपर चिड़वा, सन्देश, शक्कर, केले आदिके ढेर लग गये तथा दूध, दहीके बड़े–बड़े कड़ाहे भर गये। जब वहाँके बाजारमें सारा सामान समाप्त हो गया, तो दूसरे–दूसरे गाँवोंसे भी सामान मँगवाया गया। कुछ ही देरमें पाणिहाटीके उत्सवकी बात सर्वत्र ही फैल गयी। अतः दूर–दूरके गाँवोंसे भी लोग अपना सामान बेचनेके लिए स्वयं ही वहाँपर आने लगे।

तत्पश्चात् दो बड़े–बड़े पात्रोंमें चिड़वा भिगाया गया। एकमें दूध, सन्देश, शक्कर आदि डालकर मिलाया गया तथा दूसरेमें दही आदि डालकर मिलाया गया। उत्सवकी बात श्रवणकर आस–पासके गाँवोंमें रहनेवाले पण्डित, भट्टाचार्य आदि भी वहाँपर पधारे। श्रीनित्यानन्द प्रभुने सबका यथायोग्य सम्मान करते हुए उन्हें चबूतरे पर ही बैठाया। तत्पश्चात् वहाँपर उपस्थित सभी लोगोंको दो–दो मिट्टीके पात्रोंमें चिड़वा दिया गया। बीस लोग तीन स्थानोंपर परिवेषण कर रहे थे। लोग थे कि आते ही जा रहे थे। जब तटपर स्थान नहीं बचा तो लोग मिट्टीके पात्र लेकर जलमें ही खड़े हो गये।

उसी समय वहाँपर श्रीराघव पण्डितका आगमन हुआ। वे बहुत–सा प्रसाद लेकर आये थे। सर्वप्रथम उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुको वह प्रसाद प्रदान किया और तत्पश्चात् उनके भक्तोंमें वह प्रसाद वितरण कर दिया। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहने बोले—"प्रभो! यह सब क्या है? आज तो मेरे घरमें आपका निमन्त्रण है। घरमें आपके लिए प्रसाद भी तैयार है, परन्तु आप तो यहाँपर दही–चिड़वाका उत्सव कर रहे हैं। यह सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु हँसते हुए कहने लगे—"राघव! तुम चिन्ता मत करो। अभी मैं यही खा लेता हूँ, आपके घरमें रात्रिके समय प्रसाद ग्रहण करूँगा।"

क्रमशः

विरह-संवाद

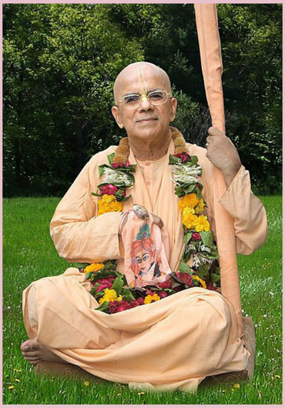

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज

अत्यन्त दुःखके साथ अवगत कराया जा रहा है कि विगत ५ मई, २०२४, रविवार, वैशाख मास, कृष्ण-पक्ष, द्वादशी तिथिको प्रातः ९:२० पर हमारे सुपरिचित, निरन्तर श्रीगुरु-वैष्णव-भगवान्के सेवा-परायण, अत्यन्त सरल-स्निग्ध-एकनिष्ठ, हमारे आराध्य गुरुवर्ग नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके चरणाश्रित, उनके स्नेह-उपदेश धन्य तथा इस्कॉन संस्थाके सम्पूर्ण भारतके नियामक संघ प्रतिनिधि (Governing Body Commissioner) श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने ७९ वर्षकी आयुमें देवभूमि उत्तराखण्डके देहरादून नामक स्थानपर अपने चरणाश्रित एवं गुणमुग्ध भक्तोंको अन्तर्वेदनामें निमग्नकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-श्रीराधाश्यामसुन्दरकी उत्तरोत्तर सेवाओंमें अधिकार प्राप्त किया है।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजके अप्रकट होनेका समाचार अल्प समयमें ही समस्त भारत तथा विश्वके अन्य सभी स्थानोंपर पहुँच गया। सभी स्थानोंपर उन्हींका प्रसङ्ग कीर्तित होने लगा। उनके सेवकोंने सभी प्रकारकी जानकारी भली प्रकारसे विभिन्न सञ्चार-माध्यमोंसे प्रेरित की। श्रील महाराजजीको पहले देहरादूनसे नई दिल्ली स्थित श्रीश्रीराधा-पार्थसारथी मन्दिर इस्कॉनमें लाया गया तथा आनेवाले सभी दर्शनार्थी भक्तोंको उनका दर्शन, चरण-स्पर्श करनेका सुअवसर प्रदान किया गया। अगले दिन ६ मई, २०२४, सोमवारको श्रील महाराजजीको श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीकृष्ण-बलराम मन्दिर इस्कॉनमें लाया गया तथा श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके समाधि मन्दिर तथा मन्दिरमें सेवित श्रीविग्रहोंके दर्शन करानेके पश्चात् उन्हें वृन्दावन परिक्रमा-मार्गपर स्थित इस्कॉन गौशालाके समाधि-प्राङ्गणमें गौड़ीय-वैष्णव विधानानुसार दोपहर ३ बजेसे ४ बजेके मध्य समाधि प्रदान की गयी।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजका शुभ आविर्भाव १४ अगस्त १९४४, भाद्र-मास कृष्ण-पक्षकी अन्नदा एकादशी तिथिपर नई दिल्लीमें एक सनातन धर्मावलम्बी समृद्ध परिवारमें हुआ था। माता-पिताने अपने बालकका नाम 'गोपाल-कृष्ण' रखा। बालक गोपाल-कृष्णकी साधु-पुरुषोंके प्रति अपार श्रद्धा तथा पारमार्थिक विषयोंमें स्वाभाविक रूचि थी।

दिल्ली विश्वविद्यालयसे १९६४ ई॰ में स्नातककी शिक्षा (graduation) पूर्ण करनेके पश्चात् युवक श्रीगोपाल-कृष्ण business management (व्यावसायिक प्रबन्धन) की उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु फ्रांसकी राजधानी पेरिसके सोरबॉन विश्वविद्यालय गये, जिसके लिए उन्हें वहाँकी सरकारकी ओरसे छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात्, उन्होंने मोण्ट्रियल (कनाडा) स्थित मैकग्रिल यूनिवर्सिटीसे business administration (व्यावसायिक प्रबन्धन) में स्नातकोत्तरकी शिक्षा (Post graduation) सम्पूर्ण की।

कनाडामें अपने निवासके समय वर्ष १९६७ से ही श्रीगोपाल-कृष्ण अपनी स्वाभाविक रुचि-अनुरूप विभिन्न धार्मिक स्थलों यथा मन्दिर, गुरुद्वारे, चर्चमें जाते थे और वहीं पर अपना बहुत समय व्यतीत करते थे। उसी समय उन्होंने मोण्ट्रियल स्थित श्रीकृष्ण भावनामृत संघ (इस्कॉन) के केन्द्रमें भी जाना प्रारम्भ किया। यहीं पर १ जून, १९६८ में इस्कॉनके संस्थापकाचार्य श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजसे उनकी प्रथम भेंट हुई जिनसे निकट भविष्यमें उन्होंने हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहण की।

प्रथम भेंटके समयसे ही श्रीगोपाल-कृष्ण प्रभु अपने गुरुदेवके प्रति विशेष श्रद्धायुक्त थे। वे नियमित रूपसे अपने गुरुदेवसे मिलने जाते थे तथा प्रवचन पूरा होने तक ध्यानपूर्वक हरिकथा श्रवण करते थे। दीक्षाके समय होनेवाले नाम परिवर्तनके विषयमें उनके गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने उन्हें पत्रके माध्यमसे बताया, "आपका नाम पहलेसे ही 'गोपाल-कृष्ण' होनेके कारण उसे परिवर्तित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी अपने योग्य एवं विनीत शिष्य श्रीगोपाल-कृष्ण प्रभुके प्रति विशेष प्रीति रखते थे तथा उन दोनोंमें नियमित रूपसे पत्र व्यवहार होता था। कुछ समय पश्चात् श्रीगोपाल-कृष्ण प्रभुने मन्दिरमें स्थायी रूपसे निवास करना आरम्भ कर दिया। अनेक वर्षों तक वे अपने गुरु महाराजके निजी सेवक भी रहे।

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने १९७५ ई॰ में श्रीगोपाल-कृष्ण प्रभुको सम्पूर्ण भारतके नियामक संघ प्रतिनिधि (Governing Body Commissioner) के रूपमें भारत भेज दिया। श्रीगोपाल-कृष्ण प्रभुको वर्ष १९७६ ई॰ में साम्यवादी देश रूस (पूर्व सोवियत संघ) में भी प्रचार-सेवाका प्रभार सौंप दिया गया। १९८१ ई॰ में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया तथा १९८२ ई॰ से आचार्यके रूपमें शिष्य ग्रहण करना आरम्भ किया। भारतमें श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने मुम्बई, दिल्ली, कुरुक्षेत्र, लुधियाना एवं कानपुर इत्यादि अनेक स्थानोंपर मन्दिर निर्माण सेवाओंका नेतृत्व किया। अपने श्रीगुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके आदेशानुसार उत्तर भारतमें विशेषकर राजधानी दिल्ली एवं उसके आसपासके क्षेत्रोंमें श्रीभगवान् के भव्य अतिसुन्दर अनेकानेक मन्दिरोंका निर्माण एवं विपुल मात्रामें अपने गुरुदेवके ग्रन्थोंका राष्ट्रभाषा हिन्दीमें वितरण करवाकर इन क्षेत्रवासियों विशेषकर युवा-पीढ़ीकी चेतनाको परमार्थकी ओर प्रेरित करनेका मुख्य श्रेयः श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजको ही जाता है।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने इस्कॉन जी.बी.सी. के रूपमें भारतके अनेक प्रान्तों तथा केन्या, कनाडा, अमरीका, पूर्वी अफ्रीका तथा रूस आदि अनेक देशोंमें भी सेवाकार्यका दायित्व सम्भालते हुए बृहद्-मन्दिरोंका निर्माण करवाया तथा भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्टके अध्यक्षके रूपमें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके ग्रन्थोंके विभिन्न भाषाओंमें अनुवाद एवं प्रकाशनकी विपुल व्यवस्थाकर विश्वके अनेक नगरोंमें भी उनका वितरण करवाया। इस प्रकार उन्होंने विश्वभरमें गौड़ीय विचार-धारा—श्रीचैतन्य महाप्रभुके सन्देशके प्रचार-प्रसारमें अतुलनीय योगदान दिया।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज 'विश्रम्भेण गुरु-सेवा' के मूर्त्त विग्रह थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने गुरु महाराजके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेमें समर्पित कर दिया। अपनी सुमधुर शीतल वाणी, दैन्यपूर्ण सौम्य व्यवहार, सरल बोधगम्य भाषामें प्रवचनके द्वारा उन्होंने अनेकों जीवोंको आकर्षितकर उन्हें भजन पथपर अग्रसर किया। परस्पर गुरु-भ्राताओंमें प्रीति एवं सौहार्द बनाकर रखनेमें भी उनका योगदान अवर्णनीय है।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज अपने गुरुदेव एवं उनके द्वारा स्थापित संस्था इस्कॉनके एक दायित्वपूर्ण एवं आदर्श सेवा-निष्ठ वैष्णव रहे। अपने इष्टकी सेवामें उनका इतना अधिक आवेश था कि वे निद्रित अवस्थामें भी अपने आराध्यकी प्रीतिपूर्वक आरती उतारनेमें निमग्न देखे जाते। हमने कुछ दिन पूर्व ही एक video में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी देखा है। उनकी निस्वार्थ एवं सम्पूर्ण समर्पणकी एक झलक हमें उनके द्वारा लिखी गयी उनकी अन्तिम Will में प्राप्त होती है। यथा—

- मैं एक संन्यासी हूँ और मेरा कोई आश्रित (legally dependent family member) नहीं है।
- वृन्दावनमें मेरे शिष्य एक भूमि-खण्डपर मेरे लिए एक घर बनाना चाहते थे, परन्तु मैंने इसे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। मेरी यह इच्छा है कि वह भूमि-खण्ड इस्कॉन वृन्दावनको उपयुक्त सेवामें स्वेच्छापूर्वक व्यवहार हेतु दान कर दिया जाये।
- मेरी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति, धन राशि, बैंक डिपॉज़िट, लॉकर, वाहन, शेयर अथवा मेरे नाममें (पञ्जीकृत) कोई चल-अचल सम्पत्ति नहीं है। जिन क्षेत्रोंके प्रबन्धनकी सेवा मेरे अधीन थी, वहाँकी समस्त सम्पत्तियाँ वैधानिक रूपसे इस्कॉनके नामसे पञ्जीकृत हैं, मेरे नाम पर कुछ भी नहीं है।
- (निजी सम्पत्तिके रूपमें) मेरे पास केवल एक रॉलेक्स घड़ी है जो १९७७ई॰ में श्रील प्रभुपाद (श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज) ने मुझे भेंट की थी। मेरी इच्छा है कि यह घड़ी मेरे किसी ऐसे शिष्यको दे दी जाए जिसने श्रील प्रभुपादकी सेवामें मेरी विशेष सहायता की है।
- मेरी एकमात्र वास्तविक सम्पत्ति मेरे व्यक्तिगत श्रीविग्रह हैं। मेरी इच्छा है कि मेरी शालग्राम शिलाएँ एवं श्रीविग्रह श्रीश्रीराधा-पार्थसारथी मन्दिर (इस्कॉन दिल्ली), श्रीश्रीराधा राधिकारमण मन्दिर (इस्कॉन, पञ्जाबी बाग) तथा अन्य इस्कॉन मन्दिरोंमें मन्दिरके श्रीविग्रहोंके साथ ही पूजित हों।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुके (१/३/२५–२६) श्लोकमें 'क्षान्ति, अव्यर्थ–कालत्वं, विरक्ति, मानशून्यता आदि तथा श्रीमद्भागवतके (३/५/२१) श्लोकमें वर्णित 'तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्' लक्षणोंसे सुशोभित थे।

चन्दनकी लकड़ी घिसने पर पूर्णतया लुप्त हो जाती है तथा लेपमें परिणत होती है। वही सुगन्धित चन्दन–लेप श्रीभगवान्‌को अर्पित करनेपर उन्हें शीतलता एवं आनन्द प्रदान करता है। एक दीपक स्वयं जलकर भी अन्योंको प्रकाश प्रदान करता है। एक वृक्ष अपना सर्वस्व अन्योंकी सेवामें समर्पित कर देता है। एक छत्र उसे धारण करनेवालेकी धूप एवं वर्षासे रक्षा करता है। श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजमें भी यही सब गुण विद्यमान थे। उन्होंने पतित जीवोंके उद्धारके लिए अपनी सम्पूर्ण सत्ताको ही निस्वार्थ रूपसे श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गकी सेवामें उत्सर्ग कर दिया।

हमारे परमाराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज तथा श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजमें परस्पर विशेष प्रीति एवं सम्मान था। १९८० दशकके आरम्भके वर्षोंमें जब श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके पूर्व–आश्रमके पुत्रने कुछ लोगों द्वारा कुप्रेरित होकर कोर्टमें यह दावा किया कि उनके पिता श्रीअभयचरण डे, ब्राह्मण नहीं वैश्य थे तथा सामाजिक जाति प्रथाके अनुसार संन्यास ग्रहण नहीं कर सकते, केवल ब्राह्मण ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनके पिता एक व्यवसायी थे जो कि पश्चिम देशोंमें व्यवसायके उद्देश्यसे गये थे और इस्कॉन उनका एक पारिवारिक व्यवसायिक संस्थान है। अतः पैतृक सम्बन्धसे, पिताके परलोक गमनके पश्चात् मैं स्वयं ही इस्कॉन संस्थाकी समस्त सम्पत्तिका एकमात्र वैध मालिक हूँ। तब इस्कॉन सदस्योंके अनुरोधपर मुम्बई न्यायालयमें यह साक्षी देनेके लिए कि श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने इस्कॉन संस्थाकी स्थापनासे पूर्व ही संन्यास ग्रहण कर लिया था तथा वैदिक शास्त्रोंके आधार पर उनका अपने पूर्वाश्रमके किसी भी सदस्यसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा, हमारे श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज कई बार मुम्बई गये। श्रील गुरुदेवने बहुतसे शास्त्रीय प्रमाणोंको कोर्टमें उद्धृत करके स्थापित किया कि केवल ब्राह्मण परिवारमें जन्म लेनेसे ही कोई ब्राह्मण नही होता, बल्कि व्यक्ति अपने कर्म और गुणोंके अनुसार ब्राह्मण होनेकी योग्यता प्राप्त करता है। इस प्रकारसे श्रील गुरुदेवने तथाकथित ब्राह्मणोंके कुविचार और उनके द्वारा प्रचलित कुप्रथाको कोर्टमें खण्ड–विखण्ड कर दिया। उन्होंने इस बात पर बल देकर कहा कि श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज एक प्रामाणिक वैष्णव–परम्परामें विधिवत् दीक्षा ग्रहण करनेके कारण लौकिक जाति प्रथाकी किसी उपाधिके अन्तर्गत नहीं हैं। वैष्णव पदवी ब्राह्मण पदवीसे श्रेष्ठ है, अतः वैष्णवजन संन्यास ग्रहण करनेके अधिकारी हैं चाहे उनका जन्म किसी भी लौकिक जातिमें क्यों न हुआ हो। श्रील गुरुदेवने कोर्टमें यह भी कहा कि— मैं स्वयं श्रील स्वामी महाराज द्वारा मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे विधिवत् संन्यास ग्रहण करनेका प्रत्यक्ष साक्षी हूँ। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज अपने गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके आदेशसे विदेशोंमें श्रीमन् महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही गये थे न कि अपना कोई व्यक्तिगत व्यवसाय करनेके लिये। श्रील गुरुदेव द्वारा कोर्टमें प्रस्तुत शास्त्रीय प्रमाणों एवं उनके साक्ष्य वचनोंसे केसके इस्कॉनके पक्षमें आनेमें बहुत सहायता मिली। इस प्रकारसे श्रील गुरुदेवने इस्कॉन संस्थाकी सम्पत्तिके संरक्षणमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उस समयसे ही श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजके हृदयमें श्रील गुरुदेवके प्रति विशेष आदर एवं कृतज्ञताका भाव उदित हुआ।

१९९० दशकके आरम्भिक वर्षोंमें नई दिल्लीमें जब श्रीश्रीराधा–पार्थसारथी श्रीविग्रहोंको ग्रेटर कैलाश स्थित मन्दिरसे सन्त नगरमें निर्मित अस्थायी नये मन्दिरमें स्थानान्तरित किया गया, तब उस शोभायात्रामें श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने श्रील गुरुदेवको एक वरिष्ठ वैष्णवके रूपमें सादर आमंत्रित किया और उस अस्थायी नये मन्दिरमें ही श्रील गुरुदेवने श्रीविग्रह–तत्त्व, उनके महत्त्व और सेवाके विषयमें एक सार–गर्भित प्रवचन दिया था। श्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने श्रील गुरुदेवको नयी मन्दिर परियोजनाका एक चित्र भेंट किया तथा उनकी कृपाकी प्रार्थना की। वर्ष २०१० ई॰, कार्तिक मासमें, जब श्रील गुरुदेव अस्वस्थ–लीला कर रहे थे, श्रीश्रीमद्

गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज गोवर्धनमें श्रील गुरुदेवसे मिलने आए एवं अपना आभार व्यक्त किया।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज अपने समयके प्रधानतम वैष्णवोंमें-से हैं तथा श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके प्रशिष्योंमें अन्यतम हैं। श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजका आदर्श, निस्वार्थपूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व श्रीगुरु एवं श्रीगौराङ्गकी मनोऽभीष्ट सेवामें पूर्णतया समर्पित था, तथा वह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके परिवारकी वर्तमान एवं भविष्यकी पीढ़ियोंके समस्त भक्तोंके लिए एक उज्ज्वल प्रकाश स्तम्भके रूपमें विराजित है।

श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्यलीला ८/२४८) में कहा गया है—

दुःख मध्ये कौन दुःख हय गुरुतर?
कृष्ण-भक्त-विरह बिना दुःख नाहि देखि पर॥

श्रीरामानन्द रायने श्रीमन्महाप्रभुके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि एक कृष्ण-भक्तके विरह-जनित दुःखसे अधिक असहनीय अन्य कोई भी दुःख नहीं है। श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजके विरहमें उनके आश्रित भक्त जिस दुःखके सागरमें निमग्न हुए हैं, इसकी हमें अनुभूति है, हम इस विचारसे ही आश्वस्त हैं कि श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेवकी नित्यसेवामें विराजित हैं।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजका स्वधाम गमन वर्तमान कालके समस्त गौड़ीय-वैष्णवजनोंके लिए एक अपूर्णीय क्षति है। हमने उनके वैष्णवोचित गुणोंके विषयमें प्रायः श्रवण किया और सौभाग्यसे उन गुणोंका साक्षात् अनुभव भी प्राप्त किया। श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजके शिष्यों एवं इस्कॉनके अन्य जिन सब सदस्योंने निष्कपट रूपसे उनका सङ्ग एवं सेवा करनेका सुयोग प्राप्त किया है, वे सभी हमारे प्रणम्य हैं। हम यह आशा करते हैं कि हम सब एकसाथ मिलकर ऐसे शुद्धभक्तोंकी गुणावलीका सदा कीर्तन करते रहेंगे, उनके उपदेशोंको हृदयङ्गम करेंगे तथा उनके पदचिन्होंका अनुसरण करेंगे जिससे कि हम श्रीमन्महाप्रभुकी धारामें अपने गुरु-वर्गोंके मिशनकी निष्कपट सेवा कर सकें।

श्रीश्रीमद् गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने अपने गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजकी जिस प्रकारसे बृहद् सेवाएँ की हैं, हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, तथापि हम उनकी अहैतुकी कृपाके एक कणमात्र प्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं जिससे कि हमारे हृदयमें भी श्रीगुरु-गौराङ्गके प्रति किञ्चित् निष्ठाका उदय हो एवं हम उनकी मनोऽभीष्ट सेवाओंमें अधिकार और योग्यता प्राप्तकर अपना जीवन धन्य कर सकें।

श्रील गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराजने श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी निरन्तर सेवा तथा महाप्रभुकी दिव्य वाणीके अथक प्रचारका अपूर्व आदर्श स्थापित किया तथा पृथ्वी पर अपने अन्तिम समय तक भी प्रचार सेवा कार्यमें रत रहे। श्रीवृन्दावन धाममें अन्तिम दर्शनके लिए एकत्रित भक्तों एवं शिष्योंके एक विशाल समुदायने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें विदायी दी तथा वैष्णव रीतिके अनुसार उनके पूर्व आदेशके अनुरूप वृन्दावन परिक्रमा मार्गपर स्थित इस्कॉन गौशालासे संलग्न सुनिश्चित स्थानपर उन्हें समाधि प्रदान की गई। श्रीगौड़ीय-वैष्णव धारामें जीवोंके परम कल्याणके लिए किया गया उनका बृहद् योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

—वैष्णव-गुणमुग्ध कुछेक जन

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

विगत १५ मार्च, २०२४, शुक्रवार, फाल्गुन मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिपर पूर्वाह्न १०:०१ मिनटपर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराजके दीक्षित शिष्य एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजके संन्यास शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराजने अपनी प्रकट-लीलाका सम्वरण किया।

श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज बङ्गलादेशके यशोहर जिलेके अन्तर्गत नलभाङ्गा ग्राममें २६ अप्रैल, १९५३ ई. में वैशाख मासकी शुक्ला-त्रयोदशी तिथिपर

माता श्रीमती शान्ति रानी एवं पिता श्रीनिताइ चन्द्र महाशयको उपलक्ष्य करके आविर्भूत हुए। पिता श्रीनिताइ चन्द्रने बालकका नाम श्रीस्वप्न चन्द्र रखा। उनका सम्पूर्ण परिवार वैष्णव-धर्ममें दीक्षित था। वैष्णव परिवारमें आविर्भूत होनेके कारण बालक श्रीस्वप्न चन्द्र स्वाभाविक रूपसे ईश्वर-अनुरागी थे। अपने बाल्यकालमें उनको अपने घरमें स्थान-स्थानसे समागत साधु-संन्यासी तथा श्रद्धालु भक्तोंके दर्शन तथा कीर्तन-कथाको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे विनम्र, मेधावी तथा चित्र-अङ्कन करनेमें अति निपुण थे। शैशव अवस्थासे ही बालक श्रीस्वप्न चन्द्र तत्कालीन नलभाङ्गा ग्रामके परम वैष्णव श्रीगिरिन्द्र दास साधु और श्रीअनाथ बन्धु दासके कृपा आशीर्वादसे गौड़ीय-वैष्णव धर्मके विषयमें विशेष रूपसे प्रशिक्षित हुए। श्रीस्वप्न चन्द्रने M.Sc. तक जागतिक विद्या-अर्जन की। इसके पश्चात् वर्ष १९७४ ई. से वे सांसारिक मायासे स्वयंको मुक्त करनेका प्रयास करने लगे। उनके पास अर्थ आदि कुछ नहीं होने पर भी वे उसी वर्ष दैववशतः फाल्गुनी दोल यात्राके समारोहमें श्रीधाम मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठमें उपस्थित हुए। श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा एवं श्रीगौर-पूर्णिमाके उत्सवमें योगदान करके तथा उस उपलक्ष्यमें साधु-वैष्णवोंके श्रीमुखसे श्रीनवद्वीप-धामकी महिमा एवं श्रीगौर-वाणीको श्रवण करके वे मन्त्र-मुग्ध हो गये। तब उन्होंने साधु-वैष्णवोंके सङ्गमें श्रीधाम मायापुरमें ही रहने का निश्चय किया। उस समय श्रीचैतन्य मठकी परिचालना करनेवाले त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिकुसुम श्रमण गोस्वामी महाराजने उनके मठमें रहनेकी भलीभाँति व्यवस्था कर दी तथा श्रीचैतन्य मठके आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराजके दर्शन कराकर उनसे परिचय भी करवा दिया। १९७४ ई. में श्रीगौर-पूर्णिमाके कुछ दिन पश्चात् ही श्रीस्वप्न चन्द्रने श्रीश्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराजसे हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहणकर उनका चरणाश्रय ग्रहण किया तथा श्रीसदानन्द दास ब्रह्मचारीके रूपमें परिचित हुए।

श्रीसदानन्द दास ब्रह्मचारीको उनके गुरु महाराज अपने निकटमें ही रखते तथा सेवा-सौभाग्य प्रदान करते थे। उन्हें अपने गुरु महाराजका अत्यधिक स्नेह प्राप्त हुआ। मठवासके समय श्रीसदानन्द ब्रह्मचारीने गौड़ीय-सिद्धान्तका भलीभाँति अध्ययन किया। वे परविद्या अनुरागी थे, अतः उन्होंने लगनपूर्वक विभिन्न दर्शन शास्त्रोंके अध्ययनके पश्चात् मठमें आयोजित परीक्षामें योगदान करके सबसे अधिक अङ्क प्राप्त किये। कुछ समयके पश्चात् उन्हें उनके गुरु महाराजने गौड़ीय-सिद्धान्तकी उन्नत शिक्षाके अनुशीलन एवं स्वयं आचरण करके अन्योंको शिक्षा प्रदान करने हेतु कोलकत्ता स्थित श्रीचैतन्य रिसर्च इन्स्टीट्यूटमें भेज दिया। वहाँ उन्होंने अल्प समयमें ही गौड़ीय-सिद्धान्तकी उन्नत शिक्षाके विचारोंका अध्ययन कर लिया जिसके कारण उनमें श्रीव्रजधामके प्रति एक आकर्षण जाग्रत हुआ।

१९७६ ई. में श्रीश्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामी महाराजके अप्रकटके पश्चात् श्रीसदानन्द ब्रह्मचारी सेवा हेतु मद्रास स्थित श्रीगौड़ीय मठमें स्थानान्तरित हो गये। कुछ वर्ष वहाँ रहनेके पश्चात् श्रीसदानन्द ब्रह्मचारी व्रजमण्डलके अन्तर्गत नन्दग्राममें पावन-सरोवरके निकट स्थित श्रील सनातन गोस्वामीकी भजन कुटीरमें निवास करने लगे। उस समय उन्हें नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज एवं नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजका सर्वाधिक सङ्ग प्राप्त हुआ तथा उन्होंने इन दोनों गुरुवर्गोंकी अभिन्न गुरुपादपद्मके रूपमें सेवा की।

अब श्रीसदानन्द ब्रह्मचारीने भारतके विभिन्न स्थानोंपर प्रचार सेवा कार्य प्रारम्भ किया। वर्ष १९९३ ई. में श्रीसदानन्द ब्रह्मचारी नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजसे संन्यास ग्रहण करके श्रीभक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराजके नामसे परिचित हुए। अब वे गोवर्धनकी तलहटीमें स्थित गोविन्दकुण्डमें कुटिया बनाकर कुछेक भक्तोंके साथ रहने लगे। बीच-बीचमें प्रचार हेतु दक्षिण भारत, बङ्गलादेश, पश्चिम बङ्गाल, उड़ीसा आदि स्थानोंपर भी जाते, किन्तु व्रजमें वास करके अत्यधिक आनन्दित होते।

श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज संस्कृतके एवं विशेष करके गौड़ीय-सिद्धान्तोंके प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने उन्नत अधिकारी भक्तोंके लिये कुछ रसमय ग्रन्थोंकी भी रचना की। श्रील महाराजने अनेकानेक वैष्णवोंके महिमा-सूचक अष्टकोंकी भी रचना की है। संस्कृतके श्लोकोंकी अतिशीघ्र रचना करनेकी उनमें

विशेष कला थी। अत्यधिक विद्वान होनेके साथ-साथ श्रील महाराजजी अति सरल, कोमल तथा बालकवत् स्वभावसे सुशोभित थे। व्रजमण्डलमें जहाँ कहीं भी श्रीसारस्वत-गौड़ीय वैष्णवोंका कोई कार्यक्रम होता, श्रील महाराज सदैव वहाँ उपस्थित होकर हरिकथाका परिवेशन करते थे। पिछले लगभग ८-१० वर्षोंसे अपने अप्रकट काल तक श्रील महाराज श्रीव्रज-सारस्वत-गौड़ीय संघके अध्यक्ष पद पर भी नियुक्त रहे ।

हमारे गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रति श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराजकी गुरुवत् अपार श्रद्धा थी एवं श्रील गुरुदेव भी उन्हें अत्यधिक स्नेह तथा वैष्णवोचित मर्यादा प्रदान करते थे। श्रील गुरुदेव द्वारा आयोजित सभाओंमें उनका अवश्य ही आगमन होता था। विशेषकर प्रतिवर्ष श्रील रूप गोस्वामीके विरह-महोत्सवके उपलक्ष्यमें होनेवाली सभाओंमें हमारे श्रील गुरुदेव श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज एवं अन्य वैष्णवोंको श्रीमन्महाप्रभुके अवतरणका मुख्य कारण, श्रील रूप गोस्वामीका अवदान वैशिष्ट्य एवं श्रीरूपानुगा विचार-धाराको अपने सम्मुख ही निर्भीक रूपसे परिवेशण करनेके लिये प्रोत्साहित करते थे, जिसके फलस्वरूप श्रीसारस्वत-गौड़ीय-धारामें परवर्ती कालमें भी श्रीरूपानुगा-विचारोंका अनुशीलन और संरक्षण बना रहे। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके पश्चात् भी श्रील महाराज हमारे मठ द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमोंमें भाग लेते थे। उन्होंने हमारे श्रील गुरुदेवका प्रणाम मन्त्र, श्रील गुरुदेवकी स्मृतिमें कुछेक अष्टकम् और उनकी महिमा सूचक प्रबन्धोंकी भी रचना की है जो कि हमारे मठसे प्रकाशित पत्रिकाओं-ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं।

श्रील महाराज अत्यधिक विनीत स्वभावके थे तथा वे नवीन भक्तोंके प्रति भी स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे। उनकी हरिकथा अत्यधिक सिद्धान्तयुक्त होती थी। गौड़ीय-विचार-धारा सम्बन्धित किसी भी प्रकारका प्रश्न किये जानेपर वे प्रमाण सहित उत्तर प्रदान करते थे। श्रील महाराजने राधाकुण्डमें श्रीगोवर्धन-परिक्रमा मार्गके निकट ही एक आश्रमका भी निर्माण किया।

१५ मार्च, २०२४, शुक्रवारको चेन्नईमें श्रील महाराजने अपनी अप्रकट लीला प्रकाशित की। उन्हें चेन्नईसे श्रीराधाकुण्ड स्थित उनके आश्रममें लाया गया तथा वहीं पर हरि-सङ्कीर्तनके मध्य अनेकानेक आश्रितजनों और विभिन्न मठोंसे समागत भक्तोंकी उपस्थितिमें उनको वैष्णव-रीति-नीतिके अनुरूप समाधि प्रदान की गयी।

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराजका हठात् इस जगत्से जाना वर्तमान श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव समाजको हतप्रभ कर गया। अब उनकी अनुपस्थितिमें बहुतसे भक्त शून्यवत् अन्तर्वेदनाका अनुभव करते हैं। श्रील महाराज अपनी शुभदृष्टि हम सब पर बनाये रखें, यही उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

—वैष्णव-गुणमुग्ध कुछेक जन

श्रीपाद नवीन कृष्ण ब्रह्मचारी

विगत १३ अप्रैल, २०२४, शनिवार, चैत्र मासकी शुक्ल-पञ्चमी तिथि, जगद्गुरु श्रीश्रील रामानुजाचार्य एवं श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजके शुभ-आविर्भाव दिवस, सौर-वैशाख-मास एवं श्रीकेशव-व्रतके आरम्भिक दिन—इन समस्त शुभ उत्सवोंसे युक्त पञ्चमी तिथिका आश्रय करके हमारे आराध्य गुरुवर्ग नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके श्रीचरणाश्रित, लगभग ५० वर्षोंसे श्रीवृन्दावन-धामके कालीयदहमें स्थित श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठमें निवास करनेवाले श्रीपाद नवीन कृष्ण ब्रह्मचारी प्रभु प्रायः ८० वर्षकी आयुमें श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठमें भगवान्का स्मरण करते-करते स्वधामको प्राप्त हुए।

श्रीपाद नवीन कृष्ण प्रभुका जन्म बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेमें हुआ था। इन्होंने युवावस्थामें अपने गुरुपादपद्मका चरणाश्रय करनेके पश्चात् अनेक

वर्षों तक मठकी विभिन्न सेवाओंमें योगदान दिया। वृद्धावस्थामें भी ब्रह्ममुहूर्त्तमें उठना, प्रातः कालीन कलेवा (बाल भोग) करनेसे पूर्व संख्यापूर्वक एक लाख नाम जप करना, स्तव–स्तुतियाँ करना, नियमपूर्वक प्रतिदिन इमलीतलामें श्रीगौर–निताई, यमुनाजी तथा श्रीराधादामोदर मन्दिरमें जाकर दर्शन–प्रणाम करना उनकी दिनचर्याका अनिवार्य अङ्ग था। वे गुरुवर्गोंकी आविर्भाव–तिरोभाव तिथियोंका अत्यधिक आदरपूर्वक पालन करते थे तथा जितने अधिक वैष्णवोंका समागम हो, उतना अधिक प्रसन्न होते। किसीके द्वारा गुरुवर्गोंकी सेवा करनेपर अथवा उनकी वाणीको स्मरण करके बोलनेपर अत्यधिक आनन्दित होते तथा उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते। बहुत–सी बातोंमें उनका बालकवत् स्वभाव था। वे अहङ्कार इत्यादिसे सर्वथा दूर तथा सरल जीवन व्यतीत करनेवाले वैष्णव थे।

हमारे गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रति श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभुकी विशेष श्रद्धा थी। श्रील गुरुदेवसे व्रजभाव समन्वित अद्भुत और सूक्ष्म विचार सुनकर वे बहुत प्रभावित होते थे। एक बार श्रील गुरुदेवकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें जब श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें भक्त लोगोंने परिस्थिति वशतः उन्हें हरिकथा बोलनेका अवसर नहीं दिया तब वे बहुत उच्चस्वरसे यह कहते–कहते, "नारायण महाराज मेरे गुरुभाई हैं, इतनी वृद्धावस्थामें भी कितना परिश्रम करके देश–विदेशमें महाप्रभुकी वाणी और व्रजभक्ति—राधा–दास्यका प्रचार कर रहे हैं, मुझे उनके विषयमें बहुत कुछ बोलना था, तुमने नहीं बोलने दिया। कोई बात नहीं, मैं अभी यहाँसे सीधे मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें जाऊँगा। उनकी महिमा बोलकर ही कुछ प्रसाद ग्रहण करूँगा।" ऐसा कहकर वे मथुरा चले गये और जैसा कहा था, वैसा ही किया। किन्तु, वे मनमें कुछ रखनेवाले व्यक्ति नहीं थे। अगले दिन श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें आकर पुनः सारी बातें बोलने लगे तथा माँगकर सभी भक्तोंके साथ बैठकर प्रसाद भी पाया।

श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभु अपने गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीकी कुछ बातें पुनः पुनः Repeat करते थे, यथा—

- दूसरोंके मङ्गलके विषयमें सोचना बहुत अच्छी बात है, किन्तु उसके साथ-साथ अपने विषयमें सोचना बन्द कर देना अथवा उसपर ध्यान नहीं देना मूर्खता है।
- We have to oil our own machine अर्थात हमें अपनी चेतनाको भी भजन-अनुकूल भोजन प्रदान करना चाहिए।
- भली प्रकारसे अपनी आत्म-समीक्षा करके ही कोई भी कार्य करना चाहिए, अपने अधिकारके बाहरका कार्य करने जाकर दुःख और पश्चाताप् के अतिरिक्त अन्य कुछ हाथ नहीं लगता।
- श्रीगुरु-वैष्णव-भगवान्से सम्बन्धित किसी भी कार्यमें कपटता या दिखावा नहीं करना चाहिए, अन्यथा उनकी पूर्ण सन्तुष्टि अथवा वास्तविक सन्तुष्टि कदापि नहीं होती।

श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभुका इस जगत्से अनायास ही जाना हुआ। नित्यप्रतिके नियमानुसार ब्रह्ममुहूर्त्तमें उठकर हरिनाम करना, मङ्गल–आरती दर्शन, यमुनाजी एवं इमलीतलाके दर्शनके पश्चात् मठमें आकर जब वे स्नान करने हेतु वस्त्र उतारने लगे, तभी बीचमें कुछ अस्वस्थताका अनुभव होनेसे बिस्तरपर लेट गये और अप्रकट ही हो गये। किसीसे किसी भी प्रकारकी सेवा ग्रहण नहीं की। महाभारतके द्रोणपर्वमें वर्णन है—'*अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम्*', इस प्रकारका परावलंबन रहित अनायास देहत्याग अत्यन्त सौभाग्यसे घटित होता है। श्रीवृन्दावन–धाममें यमुनाजीके तट स्थित केशीघाट पर अनेक संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंकी उपस्थितिमें हरि–कीर्तन ध्वनिके मध्य श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभुका अन्तिम संस्कार वैष्णव–पद्धति अनुसार सम्पन्न हुआ। इनके स्वधाम गमनसे हमने एक और प्राचीन वैष्णवको खो दिया है। वे हमारे प्रति कृपादृष्टि बनाये रखें, यही उनके श्रीचरणोंमें करबद्ध प्रार्थना है।

—वैष्णव–गुणमुग्ध कुछेक जन

श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
द्वारा
भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१. **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, उ. प्र. ☎ ९७१९०७०९३९

२. **श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ ९२१९४७८००१

३. **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, प. बं. ☎ ९३३३२२२७७५

४. **श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, उ. प्र. ☎ ९९१७६४३९७१

५. **श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ ९६३४५६३७३९

६. **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, उ. प्र. ☎ (०५६५)२८१५६६८

७. **श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली ☎ (०११)२५५३३२६८

८. **श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९ ☎ ९४३३२०३७१८

९. **श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.) ☎ ८६२९९११४००

१०. **जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा ☎ ९७७६२३८३२८

११. **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**, डी-५, सेक्टर-५५, नोएडा (उ.प्र.) ☎ (०१२०)२५८२०१८

१२. **श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, सर्वे-२६, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर ☎ (०८०)२८४६६७६०

१३. **श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, मकान-२, गली-५, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू ☎ ९९०६९०४८०९

१४. **श्रीराधामाधवजी गौड़ीय मठ**, माधवी कुञ्ज, भूपतवाला, हरिद्वार ☎ (०१३३४)२६०८४५

१५. **आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ (०५६५)२५४०८४९

१६. **श्रीराधामदनमोहन गौड़ीय मठ,** २४५/१, २९वाँ क्रास, खगदास पुर, मैंन रोड़, बङ्गलूरु-५६००९३ ☎ ९९००१९२७३८

१७. **श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, १६२, सैक्टर-१६-ए, फरीदाबाद, हरियाणा ☎ ९९११२८३८६९

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2022-2024
DATE OF PUBLICATION - 21 JULY 2024

पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1 yr) – ३०० रु॰

पञ्च वर्षीय (5 yr) – १,२०० रु॰

आजीवन (Lifetime) – ७,५०० रु॰
[७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

संरक्षक (Patron) – १०,००० रु॰
[१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

सम्पर्क-सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929